अभिनव कृषि

वर्ष–5 अंक–4 दिसम्बर–2023 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

विशेषांक

● रबी फसल उत्पादन तकनीक ● सब्जी उत्पादन तकनीक ● जैविक उत्पादन तकनीक ● संरक्षित खेती

प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)–324001

जीवन की उत्पत्ति
Origin of life

इफको नैनो डीएपी (तरल)
₹600/- | 500 मिली
बीज अंकुरण दर बढ़ाए
जड़ों का करे बेहतर विकास
खेती की लागत कम करे
रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग घटाए
जल, मृदा एवं वायु प्रदूषण कम करे
IFFCO
NANO DAP
LIQUID (8:16:0)

#IFFCONanoUrea
IFFCO
इफको नैनो यूरिया तरल
पेश है किसानों के लिए दुनिया का पहला नैनो यूरिया!
लागत कम करने में सहायक
मिट्टी की गुणवत्ता को बढ़ाए
पौधों के पोषण में सहयोगी
किसानों की आय में सुनिश्चित वृद्धि
फसल उपज को बढ़ाए
पारंपरिक यूरिया से सस्ता
IFFCO
NANO UREA
Liquid
FOLLOW US:
IFFCO
INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED
IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop
इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड
जयपुर तृतीय तल, नेहरू सहकार भवन, जयपुर, राजस्थान, राजस्थान 302001
दूरभाष : 0141-2740660, 2740307, 2740307

रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869 पंजीयक समाचार पत्र भारत सरकार पोस्टल पंजीकृत संख्या कोटा/323/2023–25

कृषि प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एवं गुणवत्ता सुधार केन्द्र

(Agriculture Technology Management and Quality Improvement Centre -ATMQIC)

प्रसार शिक्षा निदेशालय

कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

स्थापना के उद्देश्य

- नवोन्मेषी कृषि प्रौद्योगिकी का प्रभावी हस्तानान्तरण
- किसान कॉल सेन्टर की स्थापना
- कृषि तकनीकी संग्रहालय की स्थापना
- कृषि संसाधन केन्द्रों की स्थापना
- कृषि आदान व उत्पाद बिक्री केन्द्र की स्थापना
- कृषक उपयोगी साहित्य प्रकाशन
- विश्वविद्यालय द्वारा विकसित विभिन्न तकनीकियों का संकलन एवं प्रदर्शन

किसान कॉल सेन्टर
0744-2662700

स्वामी प्रकाशक : डॉ. एस.के. जैन, निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Website : https://aukota.org
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com
दूरभाष : **0744- 2326727**

पुस्त प्रेष्य _____

स्वामी निदेशक प्रसार शिक्षा, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा प्रकाशक डॉ. एस.के. जैन, मुद्रक श्री जमील अहमद, मैसर्स डायमण्ड प्रिन्टर्स, शॉप नं. 2, काली मस्जिद के पास, नई धानमण्डी, कोटा से मुद्रित एवं निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा, राज. से प्रकाशित, संपादक डॉ.एस.के. जैन

अभिनव कृषि

वर्ष–5 अंक–4 दिसम्बर–2023 रजि. नं. : RAJHIN/2021/81869

संरक्षक

डॉ. अभय कुमार व्यास
कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक मण्डल

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक प्रसार शिक्षा
प्रधान संपादक एवं प्रकाशक

डॉ. के.सी.मीना
सह आचार्य (प्रसार शिक्षा)
संपादक एवं समन्वयक

डॉ. राकेश कुमार बैरवा
सह आचार्य (शस्य विज्ञान)
संपादक

डॉ. डी.के. सिंह
आचार्य (उद्यान विज्ञान)
सह–संपादक

डॉ. महेन्द्र सिंह
आचार्य (पशुपालन)
सह–संपादक

डॉ. सेवाराम रूण्डला
विषय विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)
सह–संपादक

श्रीमती गुंजन सनाढ्य
विषय विशेषज्ञ (गृह विज्ञान)
सह–संपादक

सुश्री सरिता
तकनीकी सहायक
सह–संपादक

मनोनीत सलाहकार मण्डल

डॉ.प्रताप सिंह
निदेशक, अनुसंधान

डॉ. आई.बी. मौर्य
अधिष्ठाता, उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

डॉ. एम.सी. जैन
अधिष्ठाता, कृषि महाविद्यालय, कोटा

डॉ. मुकेश चन्द्र गोयल
निदेशक, प्राथमिकता, निगरानी एवं मूल्यांकन

सदस्यता शुल्क

- ☞ त्रैमासिक (प्रति अंक) 30 रू.
- ☞ वार्षिक (चार अंक) 100 रू
- ☞ आजीवन (15 वर्ष)1000 रू.

विज्ञापन दरें

(i)	अन्तिम सम्पूर्ण (रंगीन)	रू. 10,000/-
(ii)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे (रंगीन)	रू. 6,000/-
(iii)	अन्तिम आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 5,000/-
(iv)	प्रथम एवं अन्तिम पृष्ठ के पीछे आधा पृष्ठ (रंगीन)	रू. 3,000/-
(v)	अन्दर का सम्पूर्ण पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 4,000/-
(vi)	अन्दर का आधा पृष्ठ (श्याम–श्वेत)	रू. 2,000/-

नोट : यदि विज्ञापन वर्ष के सभी चार अंकों के लिए दिया जाता है तो उपरोक्त दरों में 25 प्रतिशत की कमी की जायेगी।

सदस्यता एवं नवीनीकरण हेतु

खाता धारक	: DEE, Agriculture University, Kota
बैंक	: ICICI BANK, Nayapura, Kota
खाता संख्या	: 687801700345
IFSC	: ICIC0006878

लेख एवं सुझाव भेजने का पता

"अभिनव कृषि"
प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
बोरखेड़ा, बारां रोड़ कोटा (राजस्थान) – 324001
Email: abhinavkrishi.aukota@gmail.com दूरभाष : 0744- 2326727

प्रकाशक: प्रसार शिक्षा निदेशालय, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
मुद्रक : डामयण्ड प्रिन्टर्स, नई धानमण्डी, कोटा (राज.) मो. 9414231079

नोट– "अभिनव कृषि" में आलेख प्रकाशन हेतु लेखकों का सदस्य होना अनिवार्य है तथा लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

डॉ. एस.के. जैन
निदेशक (प्रसार शिक्षा)

Directorate of Extension Education
प्रसार शिक्षा निदेशालय
AGRICULTURE UNIVERSITY, KOTA
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा
Borkhera, Baran Road, Kota 324 001 (Raj.)
बोरखेडा, बारां रोड, कोटा 324001 (राज.)

प्रधान संपादक की कलम से.....

"अभिनव कृषि" पत्रिका का 5 वां वर्ष का चतुर्थ अंक प्रस्तुत करते हुए सम्पादक मण्डल अपार हर्ष से ओत–प्रोत है। आप सभी ने पत्रिका में प्रकाशित विभिन्न लेखों को सराहा, इसके लिए हम सहृदय आभारी है। इस अवसर पर हम अपने अनुभवी कृषि वैज्ञानिकों का भी धन्यवाद देते हैं जो अपने व्यवस्ततम कार्यक्रम में से समय निकालकर "अभिनव कृषि" के लिए सरल भाषा में लेख प्रेषित करते हैं।

हम सब इस बात के गवाह है कि विगत वर्षों में भारतीय कृषि का परिदृश्य तेजी से बदला है। आज किसान "डिजिटल एग्रीकल्चर" और "स्मार्ट कृषि" की बात करता है। परिणाम स्वरूप नव युवकों का भी कृषि के प्रति रूझान बढ़ रहा है।

कृषि में आधुनिकीकरण के साथ–साथ हमें अपने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं प्रबन्धन करने की भी आवश्यकता है। कृषि रसायनों के विवेकपूर्ण उपयोग, मृदा जाँच के आधार पर उर्वरकों के प्रयोग, मौसम पूर्वानुमान की जानकारी आदि से हम कृषि लागत को कम करके शुद्ध आय को काफी हद तक बढ़ा सकते है।

प्रस्तुत अंक में कृषि वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं के कृषक हितेशी आलेखों को सम्मिलित किया है जिनके माध्यम से रबी की विभिन्न फसलों की उन्नत खेती, जैविक खेती हेतु जैविक उवर्रकों एवं जैविक कीटनाशकों का उचित प्रयोग, गोभी वर्गीय एवं अन्य सब्जियों की वैज्ञानिक खेती, जैविक खेती की सफल खेती, चुकंदर एवं पोषण सुरक्षा हेतु राजगिरा आदि की जानकारी देने का प्रयास किया है।

मैं पत्रिका के सभी लेखकों, सम्पादक एवं सलाहकार मण्डल के सदस्यों को इस अंक को समय पर प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाऐं प्रेषित करता हूँ।

(एस.के. जैन)

अभिनव कृषि

वर्ष–5 अंक–4 दिसम्बर–2023

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	लहसुन की उन्नत खेती एवं पौध संरक्षण विशाल मीणा, हरीश वर्मा, इंदिरा यादव, दीपक कुमार एवं आशीष मीणा	1-2
2.	वनस्पति तेल के आयात पर भारत की देनदारी कम करने हेतु वैज्ञानिक तरीके से सरसों की खेती रुचि बिश्नोई एवं पी.के.पी. मीना	3-5
3.	जैविक उर्वरक के प्रयोग से सरसो की खेती में लाभ बढ़ाएँ पार्वती दीवान, राजहंस वर्मा, सुशीला ऐचरा एवं राजीव कुमार नारोलिया	6-7
4.	गोभी वर्गीय सब्जियों के रोग एवं प्रबन्धन नितिका कुमारी, सी. बी. मीणा एवं सरीता	8-9
5.	खूब फलेगी फूलगोभी और आय में भी होगी वृद्धि राकेश कुमार यादव, राजेश कुमार शर्मा, एम सी जैन एवं विनोद कुमार यादव	10-11
6.	आम की फसल में कीट व रोग प्रबंध कर भरपूर उत्पादन लें महेंद्र कुमार गोरा, वीरेंद्र सिंह, राकेश कुमार यादव एवं पवन प्रजापति	12-13
7.	जैव कीटनाशकों का कृषि में उपयोग गगनदीप सिंह, वीरेन्द्र सिंह, भुवनेश नागर, सरिता एवं नवजोत कौर	14-15
8.	एजोटोबैक्टर : एक उपयोगी जैव उर्वरक आशा कुमारी, विकास शर्मा एवं ए. के. शर्मा	16
9.	बेल (एगल मार्मेलोस) के औषधीय उपयोग भुवनेश नागर, गगनदीप सिंह, भूरी सिंह एवं राजेश कुमार	17
10.	पौषण सुरक्षा हेतू राजगिरा (ऐमारैंथस स्पें.) की उन्नत खेती हरफूल मीणा, सुश्री मनोज, भैरू लाल कुम्हार एवं राजेन्द्र कुमार यादव	18-20
11.	बायोचार : मृदा को स्वस्थ बनाये रखने का जैविक एवं पर्यावरण हितैषी आयाम राहुल चोपड़ा, अनिल कुमार गुप्ता एवं हेमराज छीपा	21
12.	भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान एवं महत्व लोकेश कुमार मीणा, सत्यनारायण मीणा, कमल चंद मीना एवं हेमंत गुर्जर	22-23
13.	जलवायु परिवर्तन का मानव जीवन एवं कृषि पर प्रभाव सुनील कुमार यादव, बी. एल. कुम्हार एवं दुर्गा शंकर मीणा	24-26
14.	जैविक खेती निरन्तर आय का स्त्रोत : सफलता की कहानी भवानी शंकर मीना, सुशीला कलवानिया एवं के. सी. मीना	27-28
15.	चुकंदर के पोषक मूल्य, फायदे और उपयोग राजू यादव, बलराज सिंह, मनोज एवं कविता अरविंदाक्षन	29-30
16.	सब्जियों की जैविक खेती मानव स्वास्थय एवं प्रकृति के लिए एक अनमोल उपहार राजू यादव, प्रकाश एवं बलराज सिंह	31-33

लहसुन की उन्नत खेती एवं पौध संरक्षण

विशाल मीणा, हरीश वर्मा, इंदिरा यादव, दीपक कुमार एवं आशीष मीणा
कृषि विज्ञान केन्द्र, बून्दी

लहसुन एक महत्वपूर्ण व पौष्टिक कंदीय मसाला फसल है, जिसका उपयोग आमतौर पर मसाले के रुप में किया जाता है। यह पेट के रोगों, आँखों की जलन, गले की खराश आदि के इलाज में कारगर है। लहसुन से खाद्य पदार्थ जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन व फास्फोरस प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त पोटाश, केल्शियम तथा मेग्नीशियम भी उपस्थित होते हैं। लहसुन में विटामिन ए, बी तथा सी, नियासिन तथा निकोटिनिक अम्ल भी पाया जाता है। हरे लहसुन में एस्कॉर्बिक अम्ल की मात्रा बहुत अधिक होती है।

लहसुन के कंद की साबुत कलियों में एक जल विलयशील, रंगहीन व गंधहीन एमिनो अम्ल 'एलीन' होता है जो कि दबाने या काटने पर एंजाइम 'एलीनेज' द्वारा प्रकिण्व की क्रिया से 'एलिसिन' में परिवर्तित हो जाता है। इस 'एलिसिन' का मुख्य अवयव एक सुगंधित पदार्थ डाई एलाइल डाइ सल्फाइड होता है जो कि मुख्य रुप से लहसुन की विशेष गंध का आधार है। लहसुन में लगभग 0.1 प्रतिशत वाष्पशील तेल होता है जिसके मुख्य अवयव डाइएलाइल डाइसल्फाइड (60 प्रतिशत), एलाइल ड्राइसल्फाइड (20 प्रतिशत), एलाइल प्रोपाइल डाइसल्फाइड (6 प्रतिशत) तथा सूक्ष्म प्रमाण में डाइइथाइल डाइसल्फाइड एवं डाइएलाइल पोलीसल्फाइड होते हैं।

भूमि एवं जलवायु : इसकी खेती मुख्यतः रबी ऋतु में करते हैं, जो कि जीवांश पदार्थ युक्त उचित जल निकास वाली उपजाऊ दोमट व रेतीली मृदा में की जाती है। लहसुन की अधिक उपज एवं गुणवत्ता के लिए मध्यम ठण्डी जलवायु, अच्छी मृदा पी.एच. 6.5–7.0 उचित माना जाता है।

उन्नतशील किस्में

टाईप 56–4 : इसका विकास पंजाब कृषि विश्वविद्यालय द्वारा किया गया था। गांठ में 25–34 पुतियाँ होती है। इसकी उपज 150–200 क्विंटल प्रति हैक्टर तक होती है।

सोलन : इस किस्म का विकास हिमाचल कृषि विश्वविद्यालय द्वारा किया गया था। इसके पौधे की पत्तियाँ अन्य किस्मों की अपेक्षा चौड़ी, लंबी और गहरे रंग की होती है। इसकी गांठे आकार में बड़ी व काफी सफेद होती है। इसकी प्रत्येक गांठ में 4 ही पुतियाँ होती है जो काफी मोटी होती है और अन्य किस्मों से अधिक उपज देती है।

कोयम्बटूर–2 : इस किस्म का विकास तमिलनाडू (कोयंबटूर) कृषि विश्वविद्यालय में किया था। इसके कंद सफेद होते हैं जो देखने में काफी आकर्षक लगते हैं और अधिक उपज देने वाली किस्म हैं।

आई.सी. 49381: इस किस्म का विकास आई.ए.आर.आई. नई दिल्ली द्वारा किया गया था। यह किस्म अधिक उपज देती है तथा फसल 160–180 दिन में तैयार हो जाती है।

यमुना सफेद (जी–1) : यह किस्म 150–160 दिनों में तैयार हो जाती है। इसका प्रत्येक शल्क कन्द ठोस और बाह्य त्वचा चाँदी की तरह सफेद, गूदा क्रीम रंग का होता है। इसकी एक गांठ में 25–30 क्लोव होती है। इसकी उपज 150–180 क्विंटल प्रति हैक्टर है। यह उपज संपूर्ण भारत में उगाने के लिए अखिल भारतीय सब्जी सुधार परियोजना के द्वारा संस्तुति की जा चुकी है।

एग्री फाउण्ड व्हाइट (जी–41) : यह किस्म गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि प्रदेशों के लिए अखिल भारतीय समन्वित सब्जी सुधार परियोजना के द्वारा संस्तुति की जा चुकी है। यह किस्म 150–180 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी एक गांठ में 20–25 क्लौव होती है। उपज 125–140 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

यमुना सफेद –2 (जी–50) : इसकी गांठे ठोस, त्वचा सफेद एवं गुदा क्रीमी रंग का होता है। यह किस्म बैंगनी धब्बा व झुलसा रोग के प्रति सहनशील होती है। यह किस्म 150–200 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उपज 150–155 क्विंटल प्रति हैक्टर तक होती है।

जी–282 : गांठे ठोस, बड़े आकार की व सफेद होती है तथा एक गांठ में 15–20 क्लौव होती है। यह किस्म 140–150 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। उपज – 175–200 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

एग्री फाउण्ड पार्वती (जी–313): यह किस्म पहाड़ों में उगाने हेतु उपयोगी है। इनके क्लोव का रंग हल्का बैंगनी होता है। इसकी एक गांठ में 12–15 क्लौव होते हैं। उपज– 175–225 क्विंटल प्रति हैक्टर होती है।

आई–सी–42891: इस किस्म का विकास आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली द्वारा किया गया था। यह किस्म अधिक उपज देती है तथा फसल 160–180 दिन में तैयार हो जाती है।

बुआई का समय एवं बीज दर : इसकी बुआई मुख्यतः रबी में अक्टूबर–नवंबर माह में की जाती है। बीज दर– 400–500 किलोग्राम स्वस्थ कलियाँ प्रति हैक्टर काम में ली जाती है।

बुआई की विधि : बुआई के समय क्यारी में कतारों की दूरी 15 सेमी व कतारों में कलियों का नुकीला भाग ऊपर की ओर होना चाहिए और बुआई के बाद कलियों को 2 सेमी मोटी मृदा की परत से ढक देना चाहियें।

खाद व उर्वरक : भूमि की तैयारी के समय 20 टन गोबर की सड़ी हुई खाद प्रति हैक्टेयर मृदा में मिला दें। 60 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40 किलोग्राम फॉस्फोरस, 100 किलोग्राम पोटाश रोपाई से पूर्व आखिरी जुताई के समय मृदा में दे। 60 किलोग्राम नत्रजन बुवाई के एक माह बाद देनी चाहिए।

सिंचाई प्रबन्धन : लहसुन की कलियों के अच्छे विकास हेतु सर्दियों में

10–15 दिनों के अंतराल पर एवं गर्मियों में 5–7 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए।

खरपतवार प्रबन्धन: खरपतवार की रोकथाम हेतु खुरपी से 2–3 बार उथली जुताई–गुड़ाई करें। फ्लूक्लोरेलिन एक लीटर को 500 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई से पूर्व प्रति हैक्टर् की दर से छिड़काव करें। छिड़काव अंकुरण पूर्व तीन दिनों के अन्दर मिट्टी में नमी रहते करना चाहिए एवं 40–45 दिनों के बाद हाथ से निराई–गुड़ाई करनी चाहिए।

गाँठों की खुदाई: फसल पकने के समय जमीन में अधिक नमी नहीं रहनी चाहिए वरना पत्तियाँ फिर से बढ़ने लग जाती है और कलियों का अंकुरण हो जाता है। पौधों की पत्तियों में पीलापन आने व सूखना शुरु होने पर सिंचाई बंद कर दें। इसके बाद 5–8 दिन पश्चात् लहसुन को पौधे सहित भूमि से उखाड़ लिया जाता है और उसके बाद पत्तियों को ऊपर से बांधकर छोटे–छोटे बण्डल बांधकर रख दिया जाता है। उसके बाद 5–6 दिन धूप में सुखाकर तत्पश्चात् ऊपर का भाग काट दिया जाता है।

उपज : लहसुन की उपज उसकी किस्मों, भूमि और फसल की देख–रेख पर निर्भर करती है। सामान्यत: लहसुन की 150–200 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज मिल जाती है।

भण्डारण : लहसुन का भण्डारण सूखे व छायादार स्थान पर करना चाहिए। लहसुन की गुच्छियों को टाट की बोरियों या लकड़ी की पेटियों में रख सकते हैं। शीतगृह में इसका भण्डारण 0–2 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान व 65–75 फीसदी आर्द्रता पर 3–4 महीने तक भण्डारित किया जा सकता है।

लहसुन के प्रमुख रोग

बैंगनी धब्बा (पर्पिल ब्लांच) : यह एक फफूँद जनित रोग है। रोग के लक्षण पत्तियों पर आंख के आकार के जैसे– बैंगनी–लाल रंग के धब्बों के रुप में दिखाई देते है, जिसके चारों ओर बड़ी पीली पट्टियाँ विकसित हो जाती है। यह धब्बे बड़े होकर पत्तियों को चारों ओर से घेर लेते हैं।

प्रबंधन: खेत साफ रखें, जल निकास की व्यवस्था करें व सिंचाई के लिए संभव हो तो बूंद–बूंद सिंचाई का उपयोग करें। मेंकोजेब 2.5 ग्राम या ट्राइसाक्लोजॉल 1 ग्राम या हैक्साकॉनाजॉल 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 30, 45 व 60 दिन पर तीन छिड़काव करें।

स्टेम फाइलम झुलसा रोग : पत्तियों पर तकुआ आकार के अण्डाकार धब्बे बनते हैं जिनके चारों ओर गुलाबी रंग की किनारी बनती है, धब्बे पत्ती के शीर्ष से आधार की ओर बढ़ते हैं। धब्बे मिलकर बड़े चकते बनाते हैं व अंत में पूरे पौधे को झुलसा देते हैं।

प्रबंधन : फसल चक्र अपनावे व फसल को खरपतवार मुक्त व साफ रखें। जल निकास की व्यवस्था रखें एवं बूंद–बूंद सिंचाई का उपयोग करें। मेंकोजेब 2.5 ग्राम या ट्राइसाइक्लोजोल 1 ग्राम या हेक्साकोनाजॉल 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 30, 45 व 60 दिन पर तीन छिड़काव करें।

मृदुरोमिल आसिता रोग : यह लहसुन का एक प्रमुख रोग है जो लहसुन को भारी नुकसान पहुँचा सकता है। रोग के लक्षण प्राय: पत्तियों के सिर से प्रारंभ होकर आधार की ओर बढ़ते हैं। रोग की अनुकूल अवस्था मिलने पर प्रभावित स्थान सफेद होकर तेजी से झुलस जाते हैं।

प्रबंधन : प्रमाणित स्त्रोत से बीज लें। उन्न्त व प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करें। रोग के लक्षण दिखाई देते ही मेटालेक्सिल 8 प्रतिशत + मेंकोजेब 64 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. के मिश्रण का 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

लहसुन में कलियों की असामयिक फुटान : लहसुन की फसल में पकाव के करीब यह समस्या देखने को मिलती है। विकसित हुए बल्ब की सारी कलियां फुटान ले लेती है व मुख्य तने के चारों तरफ से नई पत्तियों का एक झुण्ड दिखाई देता है जिससे लहसुन खराब हो जाता है।

प्रबंधन : उर्वरकों का संतुलित उपयोग करें। अधिक यूरिया ना दें, लंबे भण्डारण तक लहसुन की कलियों को फुटान से बचाने के लिए फसल पकाव से 2 से 4 सप्ताह पहले साइकोसिल 80 प्रतिशत एक ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

लहसुन के प्रमुख कीट

थ्रिप्स : यह पत्तियों का रस चूसकर पौधे को नुकसान पहुँचाते हैं, यदि फसल की प्रारंभिक अवस्था में थ्रिप्स का प्रकोप हो जाए तो पत्तियाँ सिकुड़कर टेड़ी–मेड़ी हो जाती है तथा परिपक्व अवस्था पर प्रकोप होने पर तनों पर सफेद स्लेटी रंग के चकते बन जाते हैं। अधिक प्रकोप की अवस्था में पूरा पौधा सफेद हो जाता है।

प्रबंधन : नीले रंग के चिपचिपे ट्रेप 50–60 प्रति हैक्टेयर की दर से लगावें। लहसुन के बीच में गेहूँ या मक्का की कतार लगावे जो थ्रिप्स के फसल तक पहुँचने में रुकावट पैदा करेंगी व थ्रिप्स का प्रकोप न्यूनतम हो जायेगा। प्रकोप पर डाइमिथोएट 30 ई.सी. 1 मिलीलीटर या प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। थायोक्लोप्रिड 24 एस.सी. 0.3 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से थ्रिप्स प्रकोप प्रारंभ होने से 15 दिन के अंतराल पर 2 से 3 छिड़काव नियंत्रण प्रभावी होता है। देरी से बोई गई फसल में चेंपा (मोयला) कीट के नियंत्रण हेतु वर्टिसिलियम लेकेनी 5.0 ग्राम प्रति लीटर + एजाडिरेक्टिन 3000 पी.पी.एम 5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर तीन छिड़काव करने से चेंपा ग्रसित छत्रक कम हो जाते हैं।

एरिओकिड माइट्स : यह बेहद सूक्ष्म जीव है जो ''आँखों से '' अथवा '' मैंगनीफाइंग हैंड लैंस'' से दिखाई नहीं देते हैं। इन्हें माइक्रोस्कॉपिक माइट्रस कहते हैं ,क्योंकि इन्हें माइक्रोस्कोप द्वारा ही देखा जा सकता है। खेत मे इन्हें क्षति के लक्षणों से पहचाना जा सकता है। प्रकोप होने पर पत्तियाँ खुल नहीं पाती व शीर्ष आपस में चिपक जाते हैं। पत्ती पर क्षति के पीले–चितकबरे निशान दिखाई देते हैं।

प्रबंधन: प्रकोप के लक्षण दिखाई देते ही डाइकोफॉल 18.5 ई.सी. 2 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करें व छिड़काव को 15 दिन पश्चात् दोहरावे। स्पायरोमेसीफेन 24 एस.सी. एक मिलीलीटर प्रति लीटर का घोल बनाकर छिड़काव करें।

वनस्पति तेल के आयात पर भारत की देनदारी कम करने हेतु वैज्ञानिक तरीके से सरसों की खेती

रुचि बिश्नोई एवं पी.के.पी. मीना
कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज-कोटा एवं कृषि अनुसंधान केंद्र, कोटा

भारत दुनिया में वनस्पति तेल का सबसे बड़ा आयातक है, अतः खाद्य तेल की अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए आयात पर काफी निर्भर है। वहीं वार्षिक खपत 15.60 किलो ग्राम प्रति व्यक्ति है। कुल तिलहन फसलों के उत्पादन से खाद्य तेल की आपूर्ति बड़ती खपत के बराबर नही हो पा रही है। इस प्रकार, पिछले कुछ दशकों में खाद्य तेलों के आयात में वृद्धि 174 प्रतिशत हो गई है। भविष्य में इसमें और वृद्धि होने की संभावना है। इसलिए, तिलहन उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने की सख्त जरूरत है। देश मे वनस्पति तेल उत्पादन के मामले में, सरसों का योगदान सबसे अधिक है, इसके बाद मूंगफली और सोयाबीन का स्थान है।

सरसों मुख्यतय राजस्थान, हरियाणा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, पश्चिम बंगाल, झारखण्ड एवं असम में उगायी जाती है। सरसों की खेती कृषकों के लिए बहुत लोकप्रिय होती जा रही है क्योंकि इससे कम सिंचाई व कम लागत से अन्य फसलों की अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है। सरसों की यदि वैज्ञानिक तकनिक से खेती की जाए, तो उत्पादक इसकी फसल से अधिकतम उपज प्राप्त कर सकते हैं।

उन्नत किस्में

गिरिराज (डी. आर. एम. आर. आई. जे. 31)

124–126 दिन मे पकने वाली व 22–24 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज देने वाली यह किस्म सिंचित क्षेत्र में समय से बुवाई हेतु उपयुक्त है। इस किस्म के दाने मध्यम आकार के होते है, 1000 दानो का वजन 4.83 ग्राम व तेल की मात्रा लगभग 41.4 प्रतिशत पायी गयी है।

आर. एच.–725

सरसों की यह किस्म सीमित सिंचाई स्थिति में समय पर बुवाई के लिये उपयुक्त पाई गई है। इस किस्म के दाने मध्यम आकार के, 1000 दानों का औसत वजन लगभग 5.67 ग्राम, फली की औसत लम्बा 5.97 से.मी. एवं प्रति फली 15–17 बीज होते हैं। इसमें तेल की मात्रा लगभग 40.9 प्रतिशत होती है। यह किस्म 124–126 दिन में पककर लगभग 24–26 क्विटल प्रति हैक्टर की उपज देती है।

एन. आर. सी. डी. आर. 2

यह किस्म सिंचित क्षेत्रों के लिए समय पर बुवाई करने हेतु उपयुक्त है। इस किस्म का दाना मध्यम आकार का, 1000 दानो का वजन लगभग 4.26 ग्राम है। इस किस्म मे तेल की मात्रा 40.4 प्रतिशत होती है। यह किस्म 124–126 दिनो मे पककर 18–20 क्विंटल प्रति हैक्टर की उपज देती है।

एन. आर. सी. एच. बी. 101

यह किस्म सिंचित क्षेत्रों मे देरी से बुवाई के लिए उपयुक्त पाई गई है। 124 दिन मे पकने वाली ये किस्म 180 सेमी लंबी होती है। इस किस्म के बीज मध्यम आकार के, भूरे रंग के होते है। जिनका वजन 4.7 ग्राम प्रति 1000 दाने का होता है। तेल की मात्रा 38.9 प्रतिशत पायी गयी है। यह किस्म औसतन 16–20 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज देनें के साथ–साथ सफेद रोली, पत्ती धब्बा रोग एवं स्क्लेरोटोनिया रोग से भी सहनशील है।

आर. जी. एन. 73

यह किस्म सिंचित एवं समय से बुवाई के लिए उपयुक्त है। इस किस्म के पौधे सामान्य शाखायुक्त पत्तिया गहरी हरी, किनारे कटे– फटे, मध्य शिरा सफेद होते है। दानों का रंग गहरे भूरे से काला होता है। 1000 दानों का वजन 4.5–5.0 ग्राम होता है। 125–130 दिनों मे पकने वाली ये किस्म 22–24 क्विंटल प्रति हैक्टर की पैदावार देती है। इसमें तेल की मात्रा 40–41 प्रतिशत होती है। यह किस्म पत्ती धब्बा रोग व सफेद रोली के प्रति सहनशील है।

स्वर्ण ज्योति (आर. एच. 9801)

130–135 दिन मे पकने वाली ये किस्म देर से बोये जाने के लिए उपयुक्त है। इसकी पत्तिया तीखी, नोकयुक्त, तना हरा मोमयुक्त, प्राथमिक शाखाए 8–10 फली, 3.5–4.0 सेमी लंबी, 10–12 बीज प्रति फली, 1000 दानो का वजन 4–5 ग्राम है। इसमें तेल की मात्रा 39–42 प्रतिशत देखी गयी है। ये किस्म आड़ी गिरने एवं फली छिटकने के लिये प्रतिरोधी, पाले के लिये मध्यम सहनशील एवं सफेद रोली से प्रतिरोधक है। ये किस्म औसतन 14–15 क्विंटल प्रति हैक्टर पैदावार देती है।

आशीर्वाद (आर. के. 01–03)

देरी से बुवाई जाने वाली यह किस्म 126–130 दिन मे पककर 13–15 क्विंटल प्रति हैक्टर की पैदावार देती है। इस किस्म के पौधे 130–140 सेमी के होते है, जिसमे पत्तियाँ तीखी, नोकयुक्त, तना हरा होता है। इस किस्म मे 10 से 12 बीज प्रति फली, लगभग 3.5 से 4.0 सेमी लंबी होती है । 1000 दानो का वजन 3.5–4.5 ग्राम व तेल की मात्रा 39–42 प्रतिशत है । यह किस्म पाले से मध्यम प्रतिरोधी है।

सरसों बुवाई का उचित समय

सरसों के अच्छे उत्पादन के लिए 15 से 25^0 सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। आमतौर पर सरसों की खेती बारानी क्षेत्र मे 15 सितंबर से 25 अक्टूबर व सिंचित क्षेत्रों मे 10 से 25 अक्टूबर के मध्यम मे करना उचित माना जाता है। इसकी खेती सभी मृदाओं में की जा सकती है लेकिन बलुई दोमट मृदा सर्वाधिक उपयुक्त होती है। यह फसल हल्की क्षारीयता को सहन कर सकती है।

खेत की तैयारी

खेत में दीमक, चितकबरा और अन्य कीटो का प्रकोप अधिक हो तो, नियंत्रण के लिए अन्तिम जुताई के समय क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से अंतिम जुताई के साथ खेत मे मिलाना चाहिए। साथ ही, उत्पादन बढ़ाने के लिए 2 से 3 किलोग्राम एजोटोबेक्टर व पी एस बी कल्चर की 50 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद या वर्मीकल्चर में मिलाकर अंतिम जुताई से पूर्व मिला दें।

बीज की मात्रा, बीजोपचार एवं बुवाई

शुष्क क्षेत्र मे 4–5 किलो व सिंचित क्षेत्र मे 3–4 किलो प्रति हैक्टर बीज की अवश्यकता होती है। सरसों की खेती में कीटों का प्रकोप पूरे देश में पाया जाता है। सरसों की पैदावार को घटाने में कीटों की बड़ी भूमिका होती है। बेमौसम की बारिश से बढ़ने वाली नमी और धूप की कमी की वजह से सरसों की फसल में लगने वाले कीट तेजी से फैलते हैं। कभी– कभी ये कीट उग्र रूप धारण कर लेते हैं तथा फसलों को अत्यधिक हानि पहुँचाते हैं। इसीलिए सरसों या तिलहनी फसलों को कीटों और बीमारियों से बचाना बेहद जरूरी है।

बीजोपचार के लिए बीज को 2 ग्राम मेंकोजेब या 3 ग्राम थाइरम प्रति किलो बीज की दर से उपचार करें। सफेद रोली से बचने के लिए बीज को मेटेलेक्जिल (ऐप्रोन 35 एस डी) 6 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके बोये तथा बुवाई के 30–45 दिन के बाद मेंकोजेब 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करे। वहीं पेंटेड बग कीट नियंत्रण हेतु थायोमीथोकसाम 30 एफ एस 5.0 ग्राम या इमिडाक्लोप्रिड 48 एफ एफ 6.0 ग्राम प्रति किलो बीज की बुवाई दर से बीजोपचार करे।

पोधों के बीच की दूरी 10 सेमी रखते हुए कतारो मे 5 सेमी गहरा बीज बोये। कतार से कतार की दूरी 30–45 सेमी रखे । असिंचित क्षेत्रों मे बीज की गहराई नमी के अनुसार रखे ।

उर्वरक एवं खाद की मात्रा

फसल की अच्छी पैदावार के लिए खेत में अच्छी मात्रा में खाद और उर्वरक देना चाहिए। इसके लिए खेत की जुताई के समय 8 से 10 टन (सिंचित फसल मे) व 4 से 5 टन (असिंचित फसल मे) पुरानी गोबर की खाद को प्रति हैक्टर के हिसाब से डाल देना चाहिए। रासायनिक खाद के रूप में प्रति हैक्टर के हिसाब से 80 किलो ग्राम नाइट्रोजन, 30 से 40 किलो ग्राम फास्फोरस, 375 किलो ग्राम जिप्सम एवं 60 किलो गंधक की मात्रा को खेत में डालें। फास्फोरस की पूरी व नाइट्रोजन की आधी मात्रा को जुताई के समय तथा आधी मात्रा को प्रारंभिक सिंचाई के समय दे।

सिंचाई

पहली सिंचाई बुवाई के 35 से 40 दिन बाद और दूसरी सिंचाई दाने बनने की अवस्था में करें।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार के टिकाऊ उपचार में फसल चक्र अपनाने से बहुत फायदा होता है। फसलचक्र से अधिक पैदावार प्राप्त करने, मिट्टी का उपजाऊपन बनाये रखने तथा बीमारियों और कीट से रोकथाम में भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। मूँग–सरसों, ग्वार–सरसों, बाजरा–सरसों जैसे एक वर्षीय फसल चक्र तथा बाजरा–सरसों–मूँग/ग्वार–सरसों का दो वर्षीय फसल चक्र में उपयोग करना बेहद लाभकारी साबित होता है। बारानी इलाकों में जहाँ सिर्फ रबी में फसल ली जाती हो वहाँ सरसों के बाद चना उगाया जा सकता है।

सरसों के साथ अनेक प्रकार के खरपतवार उग आते है, इनके नियंत्रण के लिए बुवाई के तीसरे सप्ताह के बाद से नियमित अन्तराल पर 2 से 3 निराई करनी आवश्यक होती हैं। रासयानिक नियंत्रण के लिए अंकुरण से पहले बुवाई के तुरंत बाद खरपतवारनाशी पेंडीमेथालीन 30 ई.सी. रसायन की 3.3 लीटर मात्रा को प्रति हैक्टर की दर से 500 से 600 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।

रोग नियंत्रण

सरसों का सफेद रतुआ या श्वेत किट्ट रोग एवं नियंत्रण

विवरण

सफेद रतुआ रोग प्रायः सभी जगह पाया जाता है, जब तापमान 10-18° सेल्सियस के आसपास रहता है तब पौधों की पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रंग के फफोले बनते है। रोग की उग्रता बढ़ने के साथ–साथ ये आपस में मिलकर अनियमित आकार के दिखाई देते हैं। पत्ती को ऊपर से देखने पर गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। रोग की अधिकता में कभी–कभी रोग फूल एवं फली पर केकडे के समान फूला हुआ भी दिखाई देता है।

प्रबंधनः समय पर बुवाई (1–20 अक्टूबर) करें। बीज उपचार मेटालेक्जिल (एप्रोन 35 एस.डी.) 6 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से करें। फसल को खरपतवार रहित रखें एवं फसल अवशेषों को नष्ट करें। अधिक सिंचाई न करें। रिडोमिल एम जेड़ 72 डब्लू.पी. अथवा मेनकोजेब 1250 ग्राम प्रति 500 लीटर पानी में घोल बनाकर 2 छिड़काव 10 दिन के अन्तराल से 45 एवं 55 दिन की फसल पर करें।

झुलसा या काला धब्बा रोग

विवरण : पत्तियों पर गोल भूरे धब्बे दिखाई पड़ते हैं। ये धब्बे आपस में मिलकर पत्ती को झुलसा देते है एवं धब्बों में केन्द्रीय छल्ले दिखाई देते हैं। रोग के बढ़ने पर गहरे भूरे धब्बे तने, शाखाओं एवं फलियों पर फैल जाते हैं। फलियों पर ये धब्बे गोल तथा तने पर लम्बे होते है। रोगग्रसित फलियों के दाने सिकुड़े तथा बदरंग हो जाते है एवं तेल की मात्रा घट जाती है।

प्रबंधन : बीजोपचार मेन्कोजेब या थायरम 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से करें। रोग के प्रारम्भ होने पर मेन्कोजेब 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर 2 से 3 छिड़काव 10 दिन के अंतर से 45, 55 एवं 65 दिन की फसल पर करें।

सरसों का तना सड़न या पोलियो रोग एवं नियन्त्रण

विवरण : तने के निचले भाग में मटमेले या भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। रोग फसल पर फूल आने के बाद ही पनपता है। प्रायः यह धब्बे रूई जैसे सफेद जाल से ढ़के होते है। रोग की अधिकता में पौधा मुरझाकर या टूटकर नीचे की ओर लटक जाता है। रोगग्रस्त पौधे को चीरकर देखने पर काले रंग के स्केलेरोशिया दिखाई देते हैं।

प्रबंधन : स्वस्थ व प्रमाणित बीज का ही उपयोग करें। बीजोपचार 3 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलो बीज की दर से करें। गर्मियों में गहरी जुताई करें व फसल के अवशेष नष्ट कर दें। सिफारिश से अधिक नाइट्रोजन न डालें। फसल में कतारों और पौधों के बीच की उचित दूरी रखें। फसल घनी न रखें। बीमारी का प्रकोप देखकर 0.1 प्रतिशत की दर से कार्बेन्डाजिम दवा फूल की अवस्था पर 10 दिन के अन्तराल में दो बार पत्तियों व तने पर छिड़काव करें।

समन्वित कीट प्रबंधन :

सरसों का चितकबरा (पेन्टेड बग) कीट

विवरण : यह चितकबरा कीट प्रांरभिक अवस्था की फसल के छोटे–छोटे पौधों को ज्यादा नुकसान पहुँचाते हैं, प्रौढ़ व शिशु दोनों ही पौधों से रस चूसते है जिससे पौधे मर जाते है। यह कीट बुवाई के समय अक्टूबर माह एवं कटाई के समय मार्च माह में ज्यादा हानि पहुँचाते है।

प्रबंधन : खेत की गर्मियों में गहरी जुताई करनी चाहिए। कीट प्रकोप होने पर बुवाई के 3–4 सप्ताह बाद यदि सम्भव हो तो पहली सिंचाई कर देनी चाहिए जिससे कि मिट्टी के अन्दर दरारों में रहने वाले कीट मर जायें। छोटी फसल में यदि प्रकोप हो तो क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत धूल 15–20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव सुबह के समय करें। अत्यधिक प्रकोप के समय मेलाथियान 50 ई.सी. की 500 मि.ली. मात्रा को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

चेंपा या माहू कीट

विवरण : यह सरसों का प्रमुख कीट है जो प्रायः दिसम्बर के अन्त में प्रकट होता है और जनवरी फरवरी में इसका प्रकोप अधिक होता है। इस कीट के शिशु व प्रौढ़ पौधों का रस चूसते हैं व फसल को अत्याधिक हानि पहुँचाते हैं। यह कीट मधुस्त्राव निकालते है जिससे काले कवक का आक्रमण होता है और उपज कम हो जाती है। यह कीट कम तापमान व 60–80 प्रतिशत आर्द्रता में अत्यधिक वृद्धि करते हैं।

प्रबंधन : फसल की बुवाई अगेती (1 से 15 अक्टूबर के मध्य) करना चाहिए। चेंपा युक्त फसल की टहनियों को 2–3 बार तोड़कर नष्ट कर देने से चेंपा के गुणन को रोका जा सकता है। नीम की खली का 5 प्रतिशत घोल का छिड़काव नियत्रंण के लिए प्रभावशाली है। अधिक प्रकोप की अवस्था में ऑक्सीडेमेटान मिथाइल 25 ई.सी. या डाइमेथोएट 30 ई.सी. 500 मिली लीटर दवा 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव सांयकाल के समय करना चाहिए।

जैविक उर्वरक के प्रयोग से सरसो की खेती में लाभ बढ़ाएँ

पार्वती दीवान, राजहंस वर्मा, सुशीला ऐचरा एवं राजीव कुमार नारोलिया

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविधालय, जोबनेर

देश में क्षेत्रफल तथा उत्पादन दोनो की दृष्टि से सरसों का तिलहनी फसलों में प्रमुख स्थान है। सरसो रबी की एक प्रमुख तिलहनी फसल है जिसका भारतीय अर्थव्यवस्था में एक विशेष स्थान है। हमारे देश में राई–सरसो का उत्पादन मुख्यतः उपेक्षित मृदा में किया जाता है साथ ही रासायनिक उर्वरको के लगातार प्रयोग के कारण अब स्वास्थ्य तथा पर्यावरण प्रदूषण सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न होने लगी हैं। अधिक उत्पादन के लिए रासायनिक उर्वरकों के अन्धाधुन्ध प्रयोग के कारण मृदा की उर्वरता घट जाती है तथा उसमें उपस्थित विभिन्न जीवाणुओं का संतुलन बिगड़ जाता है। इसके फलस्वरूप उत्पादन में स्थिरता, उत्पादकता में कमी तथा खेत की लागत बढ़ी है। मृदा की ऐसी अवस्था में उन्नत प्रजातियों की संभावित उत्पादकता प्राप्त नहीं हो पाती है। जैविक उर्वरको के प्रयोग से मृदा संबंधी कई समस्याओ के समाधान के साथ–साथ सरसों उत्पादन से लाभ भी बढ़ाया जा सकता है।

जैविक उर्वरक जिसे जैविक खाद या जीवाणु खाद के नाम से भी जाना जाता है, मुख्यतः मृदा में पाए जाने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीव है जिन्हें कृत्रिम तरीके से प्रयोगशाला में संवर्धित कर अनुकूल माध्यम में मिलाकर किसानो को पैकेट के रूप में देते है। जैविक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा का स्वास्थ्य सुधरता है, पौधे की सही बढ़वार होती है। तथा उत्पादन में वृद्धि होती है। जैविक उर्वरक रासायनिक उर्वरकों की तुलना में सुरक्षित, सस्ते तथा पर्यावरण मित्रवत होते है। इसमें उपस्थित सूक्ष्मजीव (जीवाणु) मृदा में सक्रिय होकर वातावरण से नाइट्रोजन स्थिर करते हैं, फास्फोरस को घुलनशील बनाते है, सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक, तॉबा आदि का पौधे द्वारा अवशोषण सुगम बनाते हैं।

ये सूक्ष्म जीव पादप वृद्धि नियामक हार्मोन्स, विटामिन्स तथा जरूरी अमीनो अम्लों का निर्माण भी करते हैं। जैविक उर्वरकों में उपस्थित कुछ सूक्ष्म जीव रोग कारक जीवों से पौधों की रक्षा भी करते हैं। इस प्रकार जैविक उर्वरक मृदा की गुणवत्ता बनाए रखने के साथ–साथ कम लागत में फसल उत्पादन भी बढ़ाते हैं। छोटे तथा मझोले किसानों के लिए जैव उर्वरक महंगे रासायनिक उर्वरकों का एक अच्छा विकल्प है। जैविक खेती में भी जैव उर्वरकों का प्रयोग कर अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

जैविक उर्वरको के प्रकार

विभिन्न प्रकार की फसलों के लिए भिन्न–भिन्न सूक्ष्मजीव जैसे – धान के लिए अजोला तथा दलहनी फसलों के लिए राईजोबियम उचित क्रिया करके अच्छे परिणाम देते हैं। इसी प्रकार विभिन्न मृदाओं के लिए भी अलग–अलग सूक्ष्मजीव सही परिणाम देते हैं। इसलिए सभी प्रकार के जैविक उर्वरक राई–सरसों की फसल के लिए उचित नहीं होते हैं। सरसों फसल के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने में दो जैविक उर्वरक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है – नाइट्रोजन स्थिरीकरण तथा फास्फोरस घोलक जैविक उर्वरक।

नत्रजन स्थिरीकरण करने वाले जैविक उर्वरक

कुछ जीवाणु जैसे एजोटोबैक्टर एवं एजोस्पाइरिलम प्रजाति के जीवाणु राई–सरसों के जड़–तंत्र में रहते हैं तथा वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरीकरण कर पौधों उपलब्ध कराते हैं। ये जीवाणु बीज के अंकुरण तथा पौधे की बढ़वार में सहायक होने के साथ–साथ भूमि में अनेकों रोगकारी कवकों की वृद्धि को नियंत्रित करते है। इन जीवाणुओं की मृत कोशिकाओं से भूमि में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में वृद्धि होती है। इन सूक्ष्मजीवों से बने जैविक उर्वरक सरसों की फसल के लिए उपयुक्त रहते है। इनके प्रयोग से फसल की पैदावार में 10–20 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है। यह जीवाणु पौधों की पैदावार में वृद्धि करने वाले हार्मोन भी बनाते है, जो फसल के विकास में सहायक होते है।

जैविक उर्वरको के कार्य करने की प्रणाली

एजोटोबैक्टर

एजोटोबैक्टर वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का पौधो के जड़–क्षेत्र में स्थिरीकरण कर पौधों के लिए नत्रजन उपलब्ध कराते हैं। एजोटोबैक्टर प्रजाती की विशेशताएँ इस प्रकार है–

- एजोटोबैक्टर लगभग 10–15 किलो प्रति हैक्टेयर नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने में सक्षम होते है।
- इन जीवाणु द्वारा उत्पन्न वृद्धि नियामक पदार्थ पौधो के अकुंरण, वृद्धि एवं विकास में सहायता करने के साथ–साथ उत्पादन भी बढ़ाते है।
- कुछ परिस्थितियों में ये कवक रोधी पदार्थ उत्पन्न कर रोगों से बचाव करते है।
- इसके प्रयोग से फसल की वृद्धि एवं विकास ठीक प्रकार से होता है जिसके फलस्वरुप उत्पादन में बढ़त हो सकती है।

एजोस्पाइरिलम प्रजाति

एजोस्पाइरिलम का प्रयोग सरसों की फसल में नवीन है। यह पौधों की जड़ो के भीतर सहजीव के रुप में पनपता है और वायुमण्डलीय नाइट्रोजन की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में इसका प्रयोग लाभकारी होता है। ये जीवाणु पौधे की जड़ो द्वारा उत्सर्जित प्रतिउत्पादों पर निर्भर रहता है। एजोस्पाइरिलम की विशेशताएँ इस प्रकार है।

- मृदा में पहुंचकर ये अपनी संख्या में गुणात्मक वृद्धि कर करोड़ों की संख्या में पहुंच जाते हैं तथा अपने अन्दर उपस्थित एन्जाइयो की सहायता से नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है।
- ये पौधो में खनिज तत्वों तथा पानी का अवशोषण बढ़ाता है।
- इसके द्वारा 20–25 किग्रा प्रति हैक्टेयर तक नाइट्रोजन का स्थिरीकरण संभव है।
- सरसों की गेहूं अथवा जौ के साथ अन्तः खेती करने पर यह अधिक प्रभावी होता है।

फास्फोरस घोलक सूक्ष्मजीव (पीएसबी)

यह जीवाणु मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाकर पौधों में इसकी उपलब्धता को बढ़ाते है। यह कार्बनिक अम्ल बनाते है जिससे घुलनशील फॉस्फेट (ट्राइकैल्शियम फॉस्फेट, मैग्नीशियम फॉस्फेट, रॉकफॉस्फेट और बोनमील) घुलनशील होकर पौधों को उपलब्ध हो जाता है। इसके प्रयोग से औसतन 50 प्रतिशत तक फॉस्फेरिक खाद की बचत की जा सकती है। सरसों की फसल में इस प्रकार के जैविक उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। कई जीवाणु (जैसे – बैसिलस प्रजाति, स्यूडोमोनास प्रजाति) तथा कवक (जैसे–एस्परजिलस प्रजाति, मेनिसीलियम प्रजाति आदि) कार्बनिक अम्लों का उत्पादन कर मृदा में उपस्थित अघुलनशील फोस्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित कर देते है। ये कार्बनिक अम्ल मृदा का पी.एच मान कम कर फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में लाते हैं। इसके अलावा इन सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्सर्जित हाइड्रॉक्सिल अम्ल मृदा में उपस्थित कैल्शियम तथा लौह को सोखकर फास्फेट का पौधे द्वारा अवशोषण बढ़ाते है। फॉस्फोरस घुलनकारी सूक्ष्म जीवों की विशेषताएँ निम्नलिखित है–

- फास्फोरस घुलनशील सूक्ष्मजीवों से बीज उपचार करने पर फास्फोरस उर्वरको की कम मात्रा का प्रयोग कर समान उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।
- फास्फोरस घुलनकारी सूक्ष्मजीव मृदा में उपस्थित फास्फोरस को घुलनशील बना देते है जिससे पौधो के लिए फॉस्फोरस की उपलब्धता बढ़ जाती है।
- ये फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में बनाने के साथ–साथ पौधें द्वारा अवशोषित होने वाले रूप में भी परिवर्तित कर देते है जिससे इसका अवशोषण भी बढ़ जाता है।
- इनके द्वारा भी पादप वृद्धि नियामक हार्मोन्स का निर्माण होता है जिससे पौधे की वृद्धि एवं विकास सही प्रकार से होता है।

जैविक उर्वरकों का भण्डारण कैसे करें

जैविक उर्वरक जीवित सूक्ष्मजीवों से बनता है इसलिए इनके भण्डारण के लिए उचित परिस्थितियों की आवश्यकता होती है। जैविक उर्वरको को ठण्डे स्थानों (25–28 डिग्री सेल्सियस) पर भण्डारित करना चाहिए जिससे वे अधिक समय तक जीवित रहते है। इसके सीलबन्द जैविक उर्वरको को सूर्य की सीधी किरणों से बचाकर छायादार स्थान पर रखें। भण्डारण की अवधि में इसे रासायनिक उर्वरकों तथा अन्य किसी भी रसायन के सम्पर्क से बचाऐ।

प्रयोग की विधि

सभी प्रकार के जैविक उर्वरको के प्रयोग की विधि लगभग समान है। एक हैक्टेयर सरसो के खेत की बुवाई के लिए 200–250 ग्राम जैविक उर्वरक पर्याप्त रहता है। सरसों की फसल के लिए बीज लेपन तथा मृदा में सीधे प्रयोग द्वारा जैविक उर्वरकों का प्रयोग कर सकते हैं।

जीवाणु खाद से बीजोपचार के लिए प्रत्येक जीवाणु खाद के 500–500 ग्राम मिश्रण को आवश्यकतानुसार पानी एवं गुड़ के घोल में मिश्रण कर एक हैक्टैयर के लिए आवश्यक बीजों (4–5 किग्रा) में छाया में मिलाऐं। उपचारित बीज को छाया में सुखाकर तुरन्त बुवाई के काम में लेवें। यदि भूमि उपचार करना है तो इसके 4 किलोग्राम एजोटोबैक्टर तथा 4 किलोग्राम फॉस्फोरस घोलक जीवाणु के मिश्रण को 100–125 किलोग्राम पकी गोबर की खाद या केचुएं की खाद में छाया में समान रूप से मिलाकर अंतिम जुताई के पूर्व खेत में बिखेर कर मिला दें। इसके बाद तुरन्त सिंचाई कर दें। आजकल जैविक उर्वरक तरल अवस्था में भी उपलब्ध्ण हैं। जिससे बीजोपचार और भी आसान हो जाता है। तरल जैविक उर्वरको को एक मजबूत प्लास्टिक की थैली में लेकर उसमें 4–5 किलो सरसों का बीज डालकर उसे सिल कर दें। इसे अच्छी प्रकार से हिलाए जिससे जैविक खाद बीजों पर भली प्रकार लग जाये। इसके बाद बीजो को 20–30 मिनट छाया में सूखाकर बुवाई के लिए प्रयोग करें।

कृषि रसायनों के साथ जैविक उर्वरकों द्वारा बीज लेपन

बीज लेपन के लिए जैविक उर्वरकों का प्रयोग कृषि रसायनों (जैसे – फफूंदनाशी तथा कीटनाशी रसायनो) के साथ–साथ किया जा सकता है। इस रसायनों के जैविक उर्वरकों में उपस्थित सूक्ष्मजीवों पर हानिकारक प्रभाव को देखते हुए थोड़ी सावधानी अपनाने की आवश्यकता होती है। इन रसायनों के प्रयोग से फसल को नन्ही अवस्था में लगने वाले रोग तथा कीटों से बचाया जा सकता है। जैविक उर्वरकों के साथ प्रयोग हेतु बीज को एक दिन पूर्व ही इन रसायनों द्वारा उपचारित कर देना चाहिए। बीज को पहले फफूंदनाशी तत्पश्चात कीटनाशी रसायनों द्वारा उपचारित करके छाया में ही सुखाऐं। जैविक उर्वरको को प्रयोग बुवाई से ठीक पहले करें तथा जैविक उर्वरको की मात्रा दुगुनी कर दें। इससे इन रसायनों का जैविक उर्वरको पर कम से कम हानिकारक प्रभाव पड़ेगा।

(फफूँदनाशी तथा कीटनाशी के साथ जैविक उर्वरको के प्रयोग की विधि)

जैविक उर्वरकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के उपाय

- जैविक उर्वरक जीवित सूक्ष्मजीवों से बनता है इस कारण धूप और अधिक ताप से इन्हें क्षति पहुंच सकती है। अतः इनका भण्डारण कम तापमान पर करें।
- जैविक उर्वरक प्रमाणित स्त्रोतो से ही लें।
- जैविक उर्वरकों का प्रयोग समाप्ति तिथि (एक्स्पायरी डेट) से पहले ही कर लें।
- पैकेट का प्रयोग करने के ठीक पहले ही खोले।
- आई.एस.आई. या बी.एस.आई. मार्क जैविक उर्वरको का ही प्रयोग करें।
- फसल के अनुसार ही जैविक उर्वरको का प्रयोग करें।
- बुवाई या तो प्रातःकाल में करें अथवा शाम को करें जिससे सूक्ष्मजीवों को कम से कम क्षति पहुंचे।

गोभी वर्गीय सब्जियों के रोग एवं प्रबन्धन

नितिका कुमारी, सी. बी. मीणा एवं सरीता
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

सब्जियां हमारे जीवन में बहुत आवश्यक हैं क्योंकि यह हमें महत्वपूर्ण विटामिन, एंटीऑक्सिडेंट, खनिज और फाइटोकेमिकल्स प्रदान करती है। हमारी बढ़ती हुई जनसंख्या तथा खान पान में बदलाव के कारण सब्जियों की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, जबकि सब्जी का उत्पादन मांग के अनुसार नहीं बढ़ रहा। गोभी वर्गीय सब्जियां भी इस समस्या से अछूती नहीं है, जिसका मुख्य कारण रोग व्याधि ही हैं। इनकी व्याधियां निम्न हैं :

आर्द्रगलन रोग : नर्सरी में सबसे अधिक नुकसान इसी रोग से होता है, यह रोग पिथियम या राइजक्टोनिया नामक फफूंद के द्वारा फैलता है। इस रोग के प्रकोप से बीज जमीन के नीचे अंकुरण से पहले ही मर जाते हैं या अंकुरण के 10–15 दिन बाद जमीन की सतह से गलकर मर जाते हैं। यह समस्या गोभी वर्गीय फसलों में अधिक गम्भीर होती है क्योंकि इनकी नर्सरी वर्षा ऋतु में पड़ती है।

आर्द्रगलन रोग

प्रबंधन

- नर्सरी की क्यारी बनाते समय ध्यान दें कि क्यारी हमेशा जमीन से 20 से.मी. ऊंची होनी चाहिए तथा किनारों की तरफ हल्की ढलान होनी चाहिए ।
- गर्मी के समय में नर्सरी की क्यारियों को सफेद पारदर्शी पॉलीथीन से अच्छी तरह ढक कर मृदा का सौर्यीकरण करें, इससे मृदा जनित रोगजनक की संख्या कम हो जाती है।
- बीज उपचार ट्राइकोडर्मा विरिडी 4 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से करें।
- बीज की बुवाई 5–7 से.मी. की दूरी पर कतारों में तथा 1.5 से 2 से.मी. की गहराई पर करें।
- बुवाई के बाद पौधशाला को बारीक छनी हुई गोबर की खाद से ढक दें, और फिर क्यारियों को सूखी घास से ढक कर हजारे से पानी डालें। बीज उगने तक पानी हजारे से ही डालें।
- बीज की बुवाई के 15 दिन बाद कैप्टान 50 डब्लू.पी. 2 ग्राम प्रति ली. पानी का घोल बनाकर पौध की जड़ों के आसपास जमीन को तर करें।

मृदुरोमिल आसिता : इस रोग के प्रारम्भ में पत्तियों के ऊपरी सतह पर पीले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं और पत्तियों की निचली सतह पर धब्बों के ठीक नीचे धागों के समाान फफूंद की बढ़वार दिखाई देती हैं। तनों पर भूरे रंग की धारियां बनती हैं। फूल का ऊपरी हिस्सा भी भूरे रंग का हो जाता है।

मृदुरोमिल आसिता

सफेद किट्ट : इस रोग के लक्षण पत्तियों एवं तनों पर कुछ उभरे हुए सफेद फफोलों के रूप में दिखाई देते हैं। ये फफोले छोटे होते हैं जो बाद में आपस में मिलकर बड़े फफोले का रूप ले लेते हैं। इस रोग का प्रभाव सबसे अधिक फूलों एवं तनों पर पड़ता है। रोगी भाग सूख जाता है तथा फूलकर टेढ़ा–मेढ़ा हो जाता है। यह रोग एलब्युगो कैन्डीडा नामक फॅफूद के कारण होता है ।

सफेद किट्ट

मृदुरोमिल आसिता तथा सफेद किट्ट रोग की रोकथाम

- फसल चक्र अपनाने के साथ–साथ, स्वथ्य एवं उपचारित बीज की बुवाई करें।
- बीज को 50 सेंटीग्रेड गर्म पानी में आधे घंटे डुबोकर प्रयोग करें।
- फसल पर रोग के लक्षण दिखाई देते ही मैंकोजेब या रीडोमिल एम. जेड. की 2.5 किग्रा. मात्रा को 800–1000 ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। 10–12 दिनों के अन्तराल पर दुबारा छिड़काव करें।

तना सड़न रोग : इस रोग लक्षण गोभी वर्गीय सब्जियों की पत्तियों एवं तनों पर जलीय धब्बे के रूप में दिखाई पड़ते हैं, बाद में ये धब्बे गहरे भूरे रंग के हो जाते है। रोगी पत्तियां शीघ्र ही मुरझा कर मरने लगती हैं। रोगी पौधे के तने पर सफेद रूई के समान फफूंद दिखई पड़ती है तथा तने का अन्दर का गूदा नष्ट हो जाता है। इस रोग का प्रकोप भूमि में अधिक नमी तथा जाड़ों में कम तापमान होने पर अधिक होता है।

प्रबंधन

- रोगी पौधों के अवशेषों को एकत्रित करके जला दें या गड्ढा खोदकर दबा दें।
- रोग के लक्षण दिखाई देते ही कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें तथा रोग की व्यापकता के अनुसार 15 दिन के अन्तराल पर दुबारा छिड़काव करें।

तना सड़न रोग

काला सड़न रोग : यह बीजाणु द्वारा फैलने वाला रोग है । इसमें पत्तियों के किनारे मुरझाने लगते हैं जो अंग्रेजी के अक्षर वी के आकार के लगते है। रोग पत्ती के किनारे से शुरू हो कर मुख्य शिरा की तरफ बढ़ता है। बाद में पूरी पत्ती का रंग पीला हो जाता है, परन्तु शिरायें काले या गहरे भूरे रंग की हो जाती हैं तथा पत्तियां मुरझाकर गिरने लगती हैं। तना अन्दर से काला हो जाता है ऐसे में यदि वर्षा हो जाये तो रोग व्यापक रूप ले लेता है। तथा तने से सिरके जैसी गंध निकलती है।

काला सड़न रोग

प्रबंधन

- खेत में जल निकास की सुचारू व्यवस्था करें।
- बीज को बोने से पहले स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 0.01 प्रतिशत (100 मि. ग्रा. प्रति किग्रा. बीज) उपचारित करें।
- स्वस्थ बीज प्राप्ति के लिए खड़ी फसल में स्ट्रेप्टोसाइक्लीन (50ग्राम/1000 लीटर पानी) का घोल बनाकर छिड़काव करें। इस घोल में चिपकने वाला पदार्थ सैंडोविट या टाइट्रान 1 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से अवश्य डालें। पहला छिड़काव रोपाई के बाद, दूसरा फूल आते समय तथा तीसरा फलियां बनते समय करें।
- इसके अलावा ब्लीचिंग पाउडर 25 किग्रा. मात्रा का बुरकाव करने से लाभ मिलता है।

बटनिंग : इस रोग में पत्तियों तथा फूल का आकार बहुत छोटा रह जाता है ऐसी दशा में पौधे का पूर्ण विकास नही होता है, यह नत्रजन की कमी से या अगेती फसल को देर से लगाने से होता है। अतः इसकी रोकथाम के लिए नत्रजन की अनुमोदित मात्रा का प्रयोग करें, तथा रोपाई सही समय से करें।

बटनिंग

व्हिपटेल : इसमें गोभी की पत्तियां घोड़े की चाबुक जैसी हो जाती तथा बहुत छोटे फूल बनते हैं। यह पौधों में मालिब्डेनम तत्व की कमी के कारण होता हैं। या अम्लीय मृदाओं में होता है। इसके रोकथाम के लिए फसल में 1 किग्रा सोडियम या अमोनियम मोलिबडेट प्रति हेक्टेयर की दर से मिलाना चाहिए तथा अम्लीय मृदा में चूना डालकर पीएच मान कम से कम 6.5 तक समायोजित करें।

व्हिपटेल

ब्राउनिंग : इसमें पत्तियां मोटी तथा भंगुर हो जाती हैं तथा नीचे की तरफ झुक जाती हैं और इनका रंग हल्का हो जाता है। तथा फूलों पर जलीय धब्बे बनते हैं, जो बाद में भूरे रंग के हो जाते है यदि तने को लम्बाई में काटकर देखा जाय तो खोखले मिलते हैं। यह रोग बोरान तत्व की कमी से होता है। इसके लिए 10–12 किग्रा. प्रति हेक्टेयर बोरेक्स मिट्टी में डाले या खड़ी फसल में 0.3 प्रतिशत प्रति हेक्टेयर का छिड़काव करें।

ब्राउनिंग

राइसीनेस : इस ब्याधि में फूल गोभी या ब्रोकली के फूल के ऊपर रोयेदार फूल मलमल की तरह निकल आते हैं, जो कि पुष्पवृन्तों के बढ़ जाने के कारण होता है। जिससे फूल का रंग खराब हो जाता है। जिसके परिणाम स्वरुप फूल का बाजार मूल्य घट जाता है। अगेती एवं मध्यम किस्मों में फूल आते समय कम तापमान होने से तथा आनुवांशिक गुणों के कारण भी आ जाती है। इसके लिए सही किस्म तथा उचित समय का चुनाव करना चाहिए।

राइसीनेस

खूब फलेगी फूलगोभी और आय में भी होगी वृद्धि

राकेश कुमार यादव, राजेश कुमार शर्मा, एम सी जैन एवं विनोद कुमार यादव
कृषि विश्वविद्यालय, बोरखेडा, कोटा (राज)

सर्द ऋतु की सब्जियों में फूल गोभी का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी खेती मुख्य रूप से श्वेत, अविकसित व गठिले पुष्प पुंज उत्पादन हेतु की जाती है। इसमें विटामिन एवं प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। सब्जी के अलावा इसका प्रयोग सूप तथा अचार, सलाद, पकौडा इत्यादि बनाने के लिए भी किया जाता है। साथ ही यह पाचन शक्ति को बढ़ाने में अत्यंत लाभदायक है।

जलवायु एवं भूमि

फूल गोभी की अच्छी उपज के लिए ठण्डी एवं नम जलवायु की आवश्यकता होती है। यह फसल अधिक ठंड या अधिक गर्मी सहन नहीं कर पाती है। शुष्क मौसम और कम नमी भी फसल के लिए अनुकूल नहीं हैं। फूल आने के समय अधिक तापमान होने से फूल पीले पड़ जाते हैं तथा उसके बीच छोटी–छोटी पत्तियाँ उग आती हैं। शाकीय वृद्धि के समय तापमान अनुकूल से कम रहने पर फूलों का आकार छोटा हो जाता है। अच्छी फसल के लिए 15–20 डिग्री तापमान सर्वोत्तम होता है। अगेती किस्मों को पछेती किस्मों से अधिक तापमान एवं लम्बे दिनों की आवश्यकता होती है। फूल गोभी के लिए बलुई दोमट मृदा उत्तम मानी जाती है जिसमें पोषक तत्वों, जीवांश एवं नमी की पर्याप्त मात्रा हो। साथ ही जल निकास की समुचित व्यवस्था भी होना आवश्यक है।

जैसा मौसम वैसी किस्में

अगेती किस्में : इनकी बुवाई मई से जून के अंत तक की जाती है। अर्ली कुंआरी, पूसा कातकी, पूसा दीपाली, पूसा अर्ली सिंथेटिक आदि प्रमुख किस्में हैं।

मध्यवर्ती किस्में : इनकी बुवाई जुलाई से अगस्त तक की जाती है। इम्प्रूव्ड जापानीज, पूसा हाइब्रिड–2, पूसा हिम ज्योति आदि प्रमुख किस्में इस समुह के अन्तर्गत आती हैं।

पछेती किस्में : इनकी बुवाई सितम्बर से मध्य अक्टूबर तक की जाती है। स्नोबाल–16, पूसा स्नोबाल के–1, हिसार–1, डानिया आदि प्रमुख किस्में हैं। फूल गोभी की किस्मों का चुनाव करते समय विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि यदि पछेती किस्मों को जल्दी बोया जाय तो पत्रों की वृद्धि ज्यादा होती है और फूलों की कम। यदि अगेती किस्मों को देर से बोया जाय तो उनका फूल छोटा रह जाता है।

नर्सरी में ही तैयार होगें स्वस्थ पौधे

पौध तैयार करने हेतु बीजों की बुवाई उठी हुई क्यारियों में की जानी चाहिए। क्यारियों के लिए उपजाऊ एवं उचित जल निकास वाली भूमि का चयन करना चाहिए। बुवाई से पूर्व बीजों को कैप्टान या थाइरम 2 से 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। गोभी की अगेती किस्मों की बुवाई मई से जून के अंत तक, मध्यकालीन किस्मों की बुवाई जुलाई से अगस्त तक तथा पछेती किस्मों की बुवाई सितम्बर से मध्य अक्टूबर तक कर देनी चाहिए। अगेती किस्मों के लिए 600 से 700 ग्राम तथा मध्यकालीन व पछेती किस्मों हेतु 375 से 400 ग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त रहता है। बीजों को कतारों में बोयें तथा मिट्टी की बारीक परत से ढक दें। सिंचाई फब्बारे से करें ताकी बीज बाहर न निकलने पायें।

रोपण का ये है उचित तरीका

बुवाई के 4 से 5 सप्ताह में पौध खेत में लगाने योग्य हो जाती है। अतः उचित दूरी पर उनकी खेत में रोपाई कर देनी चाहिए। अगेती किस्मों में पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे की दूरी 45 सेमी व पछेती किस्मों में कतार से कतार की दूरी 60 सेमी तथा पौधे से पौधे की दूरी 45 सेमी रखनी चाहिए। रोपाई से पूर्व प्रति हैक्टर डेढ किलो फ्लूक्लोरोलिन (2–3 किलो वासालिन) का छिड़काव करें अथवा 300 ग्राम आक्सीफ्लूरेफेन (400 ग्राम गोल) भूमि में मिलावें, तत्पश्चात् फसल की 45 दिन की अवस्था पर एक गुडाई करें।

इस तरह दें खाद एवं उर्वरक

खेत की तैयारी के समय 250 से 300 क्विंटल अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद भूमि में मिला दें। इसके अतिरिक्त 120 से 150 किलो नत्रजन, 80 किलो फास्फोरस तथा 60 से 80 किलो पोटाश प्रति हैक्टर की दर से दें। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा पौध लगाते समय भूमि में मिला देवें। बची हुई नत्रजन की मात्रा पौध लगाने के 6 सप्ताह बाद दें। फूल गोभी की फसल हेतु जिंक व बोरोन की कमी वाले क्षेत्रों में जिंक सल्फेट 5 किलोग्राम प्रति हैक्टर व बोरेक्स 10–15 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।

बहुत महत्वपूर्ण है सूक्ष्म तत्व, कमी से उत्पन्न होगी विकृतियाँ

बोरॉन

बोरॉन कि कमी से फूलगोभी का खाने वाल भाग छोटा रह जाता है। इसकी कमी से शुरू में फूलगोभी पर छोटे–छोटे धब्बे दिखाई देने लगते हैं तथा बाद में पूरा हल्का गुलाबी या भूरे रंग का हो जाता है जो खाने में कडुवा लगता है। फूलगोभी एवं फूल का तना खोखला हो जाता है एवं फट जाता है। इससे फूलगोभी की उपज तथा मांग दोनों में कमी आती है। इसके रोकथाम के लिए बोरेक्स 10–15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर कि दर से अन्य उर्वरक के साथ खेत में डालना चाहिए।

मॉलीब्डेनम

इसकी कमी से फूलगोभी का रंग गहरा हरा हो जाता है एवं किनारे सफेद होने लगते है जो बाद में मुरझाकर गिर जाती है। इससे बचाव हेतु 1.0 से 1.50 किलोग्राम मॉलीब्डेनम प्रति हेक्टेयर कि दर से भूमि में मिला देना चाहिए। इससे फूलगोभी का खाने वाला भाग पूर्ण आकृति को ग्रहण कर ले एवं रंग सफेद एवं चमकदार हो जाए तो पौधों कि कटाई कर लेना चाहिए। देर से कटाई करने पर रंग पीला पड़ने लगता है एवं फूल फटने लगते हैं जिससे बाजार मूल्य घट जाता है।

सही समय पर सिंवाई एवं निराई गुड़ाई

पौध लगाने के तुरन्त पश्चात हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। बाद में आवश्यकतानुसार समय–समय पर सिंचाई करते रहें। हल्की मृदाओं में 5 से 6 दिन बाद तथा भारी मृदा में 8 से 10 दिन बाद सिंचाई करनी चाहिए। खेत में खरपतवार की वृद्वि रोकने के लिए निराई गुड़ाई करना आवश्यक है। फसल में 2 से 3 बार निराई गुड़ाई करने की आवश्यकता पड़ती है। रोपाई के 4–5 सप्ताह पश्चात पौधों पर मिट्टी चढ़ायें जिससे बढ़वार अच्छी हो सके है।

पौध संरक्षण से ही होगी फसल सुरक्षित कीट प्रबंध

पत्ती भक्षक कीट : इसमें आरा मक्खी, फली बीटल, पत्ती भक्षक लटें, हीरक तितली एवं गोभी की तितली मुख्य हैं। ये कीट पत्तियों को खाकर नुकसान पहुँचाते हैं। नियंत्रण हेतु 150 मिली स्पाइनोसेड 2.5% या 250 ग्राम इमामंक्टिन बेंजोएट 5 SG 400 लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकतानुसार छिड़काव 15 दिन के बाद दोहरावें।

मोयला : ये कीट पत्तियों से रस चूसते हैं जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। नियंत्रण हेतु एसीटामिप्रिड 20एसपी का 0.15 ग्राम/लीटर की दर से छिड़काव करें या नीम तेल 3 प्रतिशत को टीपोल 0.5 मिलीलीटर का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

डाइमंड ब्लैक मोथ : बी.टी. के (बेसिलस थूरीजेंसिस कस्टकी) 500 मिली व स्पाइनोसेड 25 एस सी 15 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टेयर की दर से 3 बार छिड़काव करें या प्रोफेनोफोस 40 ई सी 1000–1500 मिली लीटर प्रति हैक्टर या क्लोरएन्ट्रानीलीप्रोल 18.5 एससी का 0.1 मिली प्रति लीटर की दर से छिड़काव उपयुक्त पाये गये हैं।

व्याधि प्रबंध

भूरी गलन या लाल सड़न : यह रोग बोरोन तत्व की कमी के कारण होता है। गोभी के फूलों पर गोल आकार के भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जो बाद में फूल को सड़ा देते हैं। नियंत्रण हेतु रोपाई से पूर्व खेत में 10 से 15 किलो बोरेक्स प्रति हैक्टर के हिसाब से प्रयोग करना चाहिए अथवा फसल पर 0.2 से 0.3 प्रतिशत बोरेक्स के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

आर्द्र गलन : यह रोग गोभी की अगेती किस्मों में नर्सरी अवस्था में होता है। जमीन की सतह पर स्थित तने का भाग काला पड़कर कमजोर हो जाता है तथा नन्हे पौधे गिरकर मरने लगते हैं। नियंत्रण हेतु बुवाई से पूर्व बीजों को थाइरम या कैप्टान 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करना चाहिए। रोग के लक्षण दिखाई देने पर बोर्डो मिश्रण 2:2:5 अथवा कॉपर ऑक्सी क्लोराइड 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।

काला सड़न : इस रोग में पौधों की पत्रियों की िराएं काली दिखाई देती हैं। उग्रावस्था में यह रोग गोभी के अन्य भागों पर भी दिखाई देने लगता है जिससे फूल के डंठल अंदर से काले होकर सड़ने लगते हैं। नियंत्रण हेतु बीजों को बुवाई से पूर्व स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 100 मिलीग्राम अथवा बाविस्टिन एक ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल में 2 घंटे उपचारित कर छाया में सुखाकर बुवाई करें। पौध रोपण से पूर्व पौध की जड़ों को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन एवं बाविस्टिन के घोल में एक घंटे तक डुबोकर लगावें तथा फसल में रोग के लक्षण दिखने पर उपरोक्त दवाओं का छिड़काव करें।

झुलसा : इस रोग से पत्रियों पर गोल आकार के छोटे से बड़े भूरे धब्बे बन जाते हैं तथा उनमें छल्लेनुमा धारियां बनती हैं अन्त में धब्बे काले रंग के हो जाते हैं। नियंत्रण हेतु जाइनेब या मेंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव आव यकतानुसार 10 दिन के अन्तराल पर दोहरावें।

अन्त में तुड़ाई के समय का रखे ध्यान एवं इतनी होगी उपज

समुचित आकार के सफेद एवं ठोस फूलों को तोड लेना चाहिए। अगेती फसल की उपज कम और मध्य एवं पछेती फसलों की पैदावार अधिक होती है। अगेती फसल से 150 से 200 क्विंटल तथा मध्य एवं पछेती फसल से 200 से 300 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त हो जाती है।

आम की फसल में कीट व रोग प्रबंध कर भरपूर उत्पादन लें

महेंद्र कुमार गोरा, वीरेंद्र सिंह, राकेश कुमार यादव एवं पवन प्रजापति
राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर एवं कृषि महाविद्यालय, कोटा

हमारे देश में उगाये जाने वाले फलों में आम सबसे अधिक लोकप्रिय फल है, इसका वानस्पतिक नाम *मैंजीफेरा इंडिका* तथा इसका कुल एनाकारडिएसी हैं। इसे फलों का राजा के उपनाम से भी जाना जाता है। इसकी खेती हमारे देश में प्राचीनकाल से होती आ रही है। इसका फल विटामिन 'ए' एंव विटामिन 'सी' का अच्छा स्त्रोत है। ताजा फल के अलावा इसका उपयोग आचार, अमचूर, चटनी, स्कवेश तथा आम लैदर आदि प्रसंस्कृत उत्पाद बनाने में भी किया जाता है। राजस्थान में यह चित्तौडगढ़, उदयपुर, बांसवाडा, डूंगरपुर, सिरोही, बूंदी, सवाई माधोपुर, कोटा, भरतपुर व दौसा जिलों में प्रमुखता से उगाया जाता है।

पोषक तत्त्वों से भरपूर है मीठे–मीठे आम

आम में 86 प्रतिशत नमी, 0.6 प्रतिशत प्रोटीन, 0.1 प्रतिशत वसा, 0.3 प्रतिशत खनिज पदार्थ, 13 मिग्रा विटामिन सी, 4800 आई.यू. कैरोटीन तथा 11.8 प्रतिशत तक कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है।

ऐसी भूमि एवं जलवायु है उपयुक्त

आम के लिये उष्ण व उपोष्ण जलवायु उपयुक्त मानी गई है। इसके लिये ऐसे क्षेत्र उपयुक्त रहते हैं जहाँ जून से सितम्बर तक पर्याप्त वर्षा होती हो तथा पुष्पन व फलन के समय मौसम साफ व खुला रहता हो। आम की वृद्धि के लिये 24–28 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है आम की उचित बढ़वार एवं फलन के लिए जीवांशयुक्त गहरी बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो उपयुक्त रहती है। भूमि का पीएच मान 6.5 से 7.5 होना उत्पादन के लिए उपयुक्त रहता है।

उन्नत किस्मों से बनेगी बात

केसर: फल मध्यम आकार के सुगन्ध युक्त, गुद्दा रेशे रहित व रंग केसरिया होता है। उपज 100 किग्रा प्रति वृक्ष होती है। फल पकने का समय जुलाई माह है।

बोम्बे ग्रीन: फल मध्यम आकार के नीचे से चपटे, छिलका पतला, चिकना व हरा होता है। प्रति वृक्ष उपज लगभग 70 किग्रा होती है तथा अनियमित फलन वाली इस किस्म के फल जून में पकते हैं।

लंगड़ा: इस किस्म का फल मध्यम आकार वाला तथा छिलका मोटा, चिकना व हरा, गूदा पीला, मीठा सुगन्ध युक्त होता है। फल पकने का समय जुलाई व प्रति वृक्ष औसत उपज 95 किग्रा होती है।

मल्लिका: नीलम तथा दशहरी के संकरण से तैयार किस्म, नियमित फलन वाली यह किस्म जुलाई में फल देती है। 82 किग्रा उपज प्रति वृक्ष और फल का वजन लगभग 262 ग्राम होता है।

आम्रपाली: यह किस्म दशहरी तथा नीलम के संकरण से तैयार की गई है, यह हर साल फल देती है तथा सघन बागवानी हेतु उपयुक्त है। इसकी प्रति वृक्ष मल्लिका की तरह 82 कि.ग्रा तक उपज प्राप्त होती है परन्तु फल वजन परास 90 से 350 ग्राम तक पाई जाती है।

दशहरी: फल आकार में छोटे से मध्यम आकार के होते हैं। इनका छिलका मोटा व पीला, गूदा पीला व रेशे रहित होता है तथा अच्छी मिठास (18 डिग्री ब्रिक्स) वाली इस फल की गुठली पतली होती है। प्रतिवृक्ष 80–100 किग्रा फल प्राप्त होते हैं।

चौसा: इसके फल मध्यम आकार के होते हैं, छिलका मोटा व पीला रेशे रहित होता है, यह जुलाई के अन्त तक पकने वाला सबसे मीठा आम (24 डिग्री ब्रिक्स) होता है।

उन्नत नियमित फलन हेतु मल्लिका, आम्रपाली, पूसा अरूणिमा, पूसा सूर्या, पूसा लालिमा, पूसा श्रेष्ठा, पूसा प्रतिमा व पूसा पीतांबर किस्में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली तथा अम्बिका व अरूणिका, सी.आई.एस.एच. लखनउ से प्राप्त कर सकते हैं। आचार हेतु रामकेला, कोकण रुचि व स्थानीय जननद्रव्य उपयुक्त रहते हैं।

यूं होगा प्रवर्धन

आम को बीज व वानस्पतिक विधियों द्वारा प्रवर्धित किया जा सकता है। उत्तम गुणों वाले वांछनीय पौधे तैयार करने के लिए वानस्पतिक विधियों का ही प्रयोग किया जाता है। इन विधियों में इनार्चिंग, वीनियर ग्राफ्टिंग, सश्वफ्टवुड ग्राफ्टिंग एवं इपिकोटाइल ग्राफ्टिंग प्रमुख है।

इनार्चिंग (भेंट कलम)

इसके लिये 60 सेंटीमीटर लम्बी व एक वर्ष पुरानी टहनी काम में ली जाती है। जब मूलवृन्त लगभग एक वर्ष का 30–45 सेमी ऊँचाई का तथा 1–1.5 सेमी मोटाई का हो जाता है तो इनार्चिंग योग्य हो जाता है। इसकी भेंट मातृ वृक्ष की एक वर्ष पुरानी 60 सेमी की टहनी से, जिसकी मोटाई मूलवृन्त के समान हो, कराई जाती है। इसके लिए जुलाई माह उपयुक्त रहता है। भेंट कलम के लिए मूलवृन्त में 20–25 सेमी ऊँचाई पर 6–7.5 सेमी. लंबी छाल कुछ काष्ठ सहित चाकू द्वारा काट ली जाती है। मूलवृन्त तथा सांकुर शाखा के कटे हुए भाग को सावधानीपूर्वक मिलाकर सूतली अथवा पॉलीथीन की पट्टी से बांध दिया जाता हैं।

वीनियर ग्राफ्टिंग

यह आम के प्रवर्धन की सरल विधि है एवं व्यावसायिक स्तर पर अपनाई जाती है। इस विधि में भी मूलवृन्त इनार्चिंग के समान ही तैयार किये जाते हैं। इसके लिए मूलवृन्त में 20 सेमी ऊंचाई के निचले हिस्से पर 3–4 सेमी लम्बा चीरा लगाये। चीरे के आधार पर एक आड़ा चीरा और लगाये जिससे कटा हुआ लकड़ी का टुकड़ा बाहर आ जाये। सांकुर शाखा पर एक तरफ लम्बा कलम के आकार का चीरा लगाये तथा दूसरी तरफ छोटा कट लगाये। मूलवृन्त से कटी सांकुर शाखा को ठीक से बैठा देना चाहिए। मूलवृन्त का ऊपरी भाग लगभग 10 दिन बाद काट देवें। वीनियर ग्राफ्टिंग करने के लिये इनार्चिंग की तरह जुलाई माह उपयुक्त रहता है।

सॉफ्टवुड़ ग्राफ्टिंग

इस विधि में लगभग 9–10 माह पुराने बीजू पौधों को मूलवृन्त के लिए काम में लिया जाता है। नये प्ररोह को ऊपर से 3–4 सेमी की लम्बाई में काट देते है। और काटे हुए ऊपरी भाग पर चीरा लगा देते हैं तथा इसमें इच्छित किस्म की टहनी को दोनों तरफ से छीलकर लगा देते हैं। राजस्थान में इस विधि के लिये 15 जुलाई से 15 अगस्त सर्वोत्तम समय पाया गया है।

इपिकोटाइल ग्राफ्टिंग
यह आधुनिक विधि है जिसमें गुठली अंकुरित होती है। 2–3 सप्ताह के मूलवृन्त पर लगभग इसी मोटाई की सांकुर को वेज (खूंटे) का आकार बनाते हुए तथा मूलवृन्त में इसे लगाने हेतु चीरा लगाकर फंसा दिया जाता है तथा पश्चलिथीन की पट्टियों से बाँध दिया जाता हैं।

ये रहेगी पौधे लगाने की विधि
पौधे लगाने का सर्वोत्तम समय जुलाई–अगस्त माह रहता है। उद्यान की भूमि को समतल कर रोपाई के एक माह पूर्व 1 मीटर x 1 मीटर x 1 मीटर आकार के गढ्ढे किस्म अनुसार 10 x 10 मीटर या 5 x 5 मीटर की दूरी पर खोदकर उन्हें खुला छोड़ देवें। प्रत्येक गढ्ढे में 25 किग्रा सड़ी हुई गोबर की खाद एक किग्रा सुपर फॉस्फेट व 50–100 ग्राम मिथाइल पैराथियॉन (2 प्रतिशत) चूर्ण मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर गड्ढा पुनः भर देवें। संकर किस्में जैसे आम्रपाली आदि को 2.5 x 2.5 मीटर दूरी पर लगाया जाता है।

खाद एवं उर्वरकों की इतनी मात्रा रहेगी उचित
आम के पौधों की अच्छी वृद्धि एवं फलों की अच्छी गुणवत्ता हेतु पर्याप्त मात्रा में खाद, उर्वरक एवं अन्य पौषक तत्त्वों का प्रयोग अति आवश्यक होता है। प्रथम वर्ष में गोबर की खाद 15 किलोग्राम दिसंबर में तथा बढ़ती हुई उम्र के साथ पांचवी साल में 75 किलो ग्राम प्रयोग किया जाता हैं। सुपर फॉस्फेट प्रथम वर्ष में 250 ग्राम तथा पांचवे वर्ष में 1 किग्रा जनवरी माह में प्रयोग किया जाता हैं। पोटाष का प्रयोग पांचवे वर्ष में जनवरी के समय में 500 ग्राम प्रयोग करते हैं। यूरिया का प्रयोग एक भाग मार्च में व दूसरा भाग जून में देते हैं व इसकी मात्रा प्रथम वर्ष में 250 ग्राम तथा पांचवी साल में 1250 ग्राम होती है। विशेषतया जस्ता तत्व की कमी होने पर 0.3 प्रतिशत जिंक सल्फेट के तीन छिड़काव पुष्पन के बाद करना चाहिए।

उचित समय पर करें संचाई एवं निराई–गुडाई
आम के बगीचे में वर्षा को छोड़कर गर्मियों में प्रति सप्ताह तथा शीत ऋतु में 15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए परन्तु नये लगाये गये पौधों को (वर्षा ऋतु को छोड़कर) 3–4 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि फल बनते समय भूमि में पर्याप्त नमी हो परन्तु फूल आने पर सिंचाई नहीं करें तथा समय–समय पर निराई–गुडाई करें ताकि उर्वरा शक्ति बनी रहे। आम के बगीचों में प्रति वर्ष 2–3 जुताई करके खरपतवार रहित कर देना चाहिए।

अन्तराशस्यन के लाभ अनेक
आम के बगीचे में प्रारम्भिक 3–4 वर्ष तक अन्तः फसलें उगाने से कृषकों को अधिक आमदनी प्राप्त होने के साथ–साथ बगीचे का रख–रखाव भी अच्छी तरही से हो जाता है।

कीट व व्याधियों का नियंत्रण
कीट प्रबंधन
मीलीबग : यह कीट आम के मुलायम भागों से रस चूसता है, इसके निदान के लिए दिसंबर माह में पेड़ के चारों ओर पॉलीथीन की 30–40 सेमी चौड़ी पट्टी जमीन से 7 सेमी की ऊंचाई पर तने के चारों तरफ लगाकर इसके निचले भाग में 15 से 20 सेमी तक ग्रीस का लेप कर देवें। इसके नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड एक मिली प्रति 3 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें ।

आम का फुदका : यह भूरे रंग का कीट होता है व आम के फूल, छोटे फल तथा नई वृद्धि का रस चूसता है जिससे पुष्पक्रम व छोटे फलों को काफी नुकसान होता है व फल मुरझाकर गिर जाते हैं तथा उपज घट जाती है इसके नियंत्रण के लिए क्यूनालफॉस दवा 0.03 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें ।

छाल भक्षक कीट : आम की छाल में घुस कर छाल को खाता है इसका नियंत्रण रूई को पेट्रोल या केरोसिन में भिगोकर कीट की सुरंग के अंदर भर देना चाहिए तथा ऊपर से मिट्टी लगा देवें ।

व्याधि प्रबंधन
चूर्णी फफूंद : इस रोग से प्रभावित भागों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है तथा अधिक प्रकोप होने पर कुछ पत्तियां गिर जाती हैं, इसके नियंत्रण हेतु घुलनशील गंधक 2.5 ग्राम या कैराथेन 1 मिली प्रति लीटर पानी में घोलकर 15 दिन के अन्तराल में दो बार छिड़काव करें।

श्यामवर्ण : इस रोग से प्रभावित पत्तियों पर भूरे व काले फफोले धब्बे दिखाई देते हैं तथा पत्तियां गिरने लगती हैं। इसके नियंत्रण के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम या मेन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

कार्यिकीय विकार (फिजियोलोजिकल डिसऑर्डर)
पुष्पशीर्ष विकृति (मैंगो मालफोर्मेशन या गुच्छा–मुच्छा) रोग
इस रोग से प्रभावित पत्तियाँ एवं पुष्पक्रम गुच्छों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। पौधों की बढ़वार रुक जाती हैं। रोग के प्रभाव को कम करने के लिए रोगी भाग को नष्ट करने के साथ 200 पीपीएम एन.ए.ए. का छिड़काव सितम्बर–अक्टूबर माह में करना चाहिए।

ब्लैक टिप
यह व्याधि आम के उन बगीचों में पाई जाती है जो ईंट के भट्टों के दो किलोमीटर के क्षेत्र में हो। इससे बचाव के लिए ईंट के भट्टों को 2 किलोमीटर दूर व चिमनियों का ऊँचा होना चाहिए। बोरेक्स रसायन का 0.6 प्रतिशत की दर से छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर फलन के बाद करना लाभदायक रहता है।

एकान्तर फलन
अक्सर आम की फसल में ऐसा देखा गया है कि पूर्ण विकसित आम के वृक्ष एक वर्ष अच्छी उपज देते हैं दूसरे वर्ष उपज बहुत कम या नहीं होती है, आम के वृक्षों की इस प्रवृति को एकान्तर फलन कहते हैं। इसके लिये नियमित फल देने वाली किस्में जैसे आम्रपाली, मल्लिका, रतना आदि किस्मों का रोपण करना चाहिए व सितम्बर–अक्टूबर माह में पैक्लोब्यूट्राजोल (5–10 ग्राम प्रति वृक्ष) मृदा में मिलाने से वृक्षों में फल आने की सम्भावना बढ़ जाती है।

उपज
प्रायः आम की उपज पेड़ की उम्र, किस्म, सघनता तथा बगीचे की देखभाल पर निर्भर करती है आम के एक वयस्क पौधे से 80 से 100 किलोग्राम तक फल प्राप्त हो जाते हैं।

जैव कीटनाशकों का कृषि में उपयोग

गगनदीप सिंह, वीरेन्द्र सिंह, भुवनेश नागर, सरिता एवं नवजोत कौर
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा एवं उद्यान विभाग, रैनी बाग, कोटा

वर्तमान समय में देश की बढ़ती आबादी को खिलाने के लिए कृषि में अत्यधिक मात्रा में रसायनों का उपयोग किया जा रहा है और कीटनाशकों के बढ़ते उपयोग के बावजूद कीट जनित हानि बढ़ रही है इसके अलावा प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों पर इन रसायनों के नकारात्मक प्रभाव को अब महसूस किया जाने लगा है जिसके कारण कृषि वैज्ञानिको का कीट नियंत्रण के ऐसे साधनो की और ध्यान केन्द्रीत हुआ है जो अधिक विश्वसनीय, टिकाऊ और पर्यावरण के अनुकूल हो। प्राकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संदुषण तथा कीटनाशो के मानव जाति पर हानिकारक प्रभावो को ध्यान में रखते हुऐ कृषि में जैव कीटनाशो का उपयोग" भविष्य के कीट प्रबंधन कार्यक्रम में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

जैव कीटनाशक

जैव कीटनाशकों से तात्पर्य है कि ''प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले वे पदार्थ, सुक्ष्मजीव (कीट, विषाणु, जिवाणु, फंफुद व सुत्रकर्मी) तथा पादपो की द्वित्तिय उपापचिय क्रियाओ के उत्पाद जो कीटों के जीवन चक्र को प्रभावित कर इनकी जनसंख्या को नियंत्रित कर फसल पर इनके हानिकारक प्रभावों को कम/नगन्य करते हैं।

एफ.ए.ओ. की परिभाषा के अनुसार, जैव कीटनाशकों में वो जैव नियंत्रण घटक शामिल होते हैं जो निष्क्रिय घटक हैं जो कि जैव नियंत्रण घटकों जैसे कि पैरासिटोइड, शिकारी, और कीट रोगजनक निमेटोड की कई प्रजातियां के विपरीत सक्रिय रूप से कीटों (हानिकारक जीव) की तलाश करते हैं। जैव कीटनाशक, एकीकृत कीट प्रबंधन का प्रमुख घटक एवं अत्यधिक विशिष्ट होते हैं जो केवल लक्षित कीट या निकट संबंधी कीट को प्रभावित करते हैं और मनुष्यों या लाभकारी जीवों को नुकसान नहीं पहुंचाते हैं जबकि रासायनिक कीटनाशक व्यापक स्पेक्ट्रम होते हैं और शिकारियों और परजीवियों के साथ–साथ मनुष्यों सहित गैर–लक्षित जीवों को प्रभावित करने के लिए जाने जाते हैं। एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) कार्यक्रम के एक घटक के रूप में जैव कीटनाशकों का उपयोग रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग को काफी हद तक कम कर सकता है और फसल की उपज का लगभग समान स्तर प्राप्त कर सकता है।

जैव कीटनाशकों के प्रकार

1. सूक्ष्मजीव कीटनाशक

माइक्रोबियल कीटनाशकों में बैक्टीरिया, कवक या वायरस तथा बैक्टीरिया या कवक द्वारा उत्पादित मेटाबोलाइट्स शामिल होते हैं। एंटोमोपैथोजेनिक नेमाटोड को भी माइक्रोबियल कीटनाशकों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है, भले ही वे बहुकोशिकीय हों। सूक्ष्मजीव कीटनाशक कई अलग–अलग प्रकार के कीटों को नियंत्रित कर सकते हैं। यह सूक्ष्मजीव जैव कीटनाशकों के अलग–अलग सक्रिय संघटक लक्ष्य कीट के लिए अपेक्षाकृत विशिष्ट होते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ कवक निश्चित खरपतवारों को नियंत्रित करते हैं, और अन्य कवक विशिष्ट कीड़े को मारते हैं।ये सूक्ष्मजीव कीटो के लिए विशिष्ट विष उत्पन्न करते है, जो कीटों में एक बीमारी उत्पन्न होने का कारण बनते है। विष उत्पादन के द्वारा, प्रतियोगिता या अन्य क्रियाओं के माध्यम से, कीटो की स्थापना को रोक कर इनका अवरोधन करते हैं। सबसे व्यापक रूप से ज्ञात सूक्ष्मजीव कीटनाशकों में जीवाणु बैसिलस थुरिंजेंसिस या बीटी की प्रजातियां हैं, जो गोभी, आलू और अन्य फसलों में कुछ कीड़ों को नियंत्रित कर सकती हैं। सूक्ष्मजीव कीटनाशकों को लगातार निगरानी करने की आवश्यकता होती है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि ये सूक्ष्मजीव कीटनाशक इंसानो सहित गैर–लक्षित जीवों को नुकसान पहुँचाने मैं सक्षम तो नहीं हो गए है ।

2. पादप समाविष्ट संरक्षक (पीआईपी)

पादप समाविष्ट संरक्षक, वह कीटनाशक पदार्थ हैं जो कि पौधे में जोड़े गए आनुवांशिक पदार्थ के द्वारा पौधों में उत्पन्न होते हैं। जैव प्रौद्योगिकी में ऐसी तकनीको का विकास होता चुका है जिसके तहत् किसी भी पादप के आनुवांशिकी पदार्थ में बाहय् जीनो का समावेश किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत पौधो के आनुवांशिकी पदार्थ में ऐसे बाहय् जीनो का समावेश कर सकते है जो कि पौधो को कीटो से लड़ने के लिए पदार्थ उत्पन्न करने में मदद करते है। इन स्व–निर्मित कीटनाशकों को ''प्लांट–इनकॉर्पोरेटेड प्रोटेक्टेंट्स'' (पीआईपी) कहा जाता है। पीआईपी उत्पादक फसलों को ''आनुवंशिक रूप से संशोधित'' (जीएम) या ''आनुवंशिक रूप से इंजीनियर'' (जीई) फसल कहा जाता है। इसका सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण बी.टी. कपास है। जिसमें वैज्ञानिको द्वारा एक मृदा जनित जिवाणु बेसिलस थुरिंजेंसिस के जीन को कपास के आनुवांशिक पदार्थ में स्थानान्तरण किया गया जो कि कपास पर आक्रमण करने वाली विभिन्न वॉलवर्म के लिए एक लिथल/घातक प्रोटिन उत्पन्न करता है जिसके परिणाम स्वरूप कीट की आंत संक्रमित हो जाती है तथा कीट मर जाता है।

3. जैव रासायनिक कीटनाशक

जैव रासायनिक कीटनाशक प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले वे पदार्थ हैं जो गैर विशैले तंत्र द्वारा कीटों को नियंत्रित करते हैं। जैव–रासायनिक कीटनाशकों में विभिन्न जैविक रूप से कार्यात्मक वर्ग शामिल हैं, जिनमें फेरोमोन, पौधे के अर्क और प्राकृतिक कीट वृद्धि नियामक शामिल हैं।

कृषि में जैव कीटनाशक एवं जैव नियंत्रण एजेंट का उपयोग

बढ़ते पर्यावरणीय विनियामक और बाजार दबाव के साथ–साथ कीट प्रतिरोध में वृद्धि कीट नियंत्रण के लिए रसायनों से दूर जाने का निर्देश दे रही है। कीट रोगजनकों (वायरस, बैक्टीरिया, कवक और निमेटोड) और माइक्रोबियल जैव कीटनाशकों को कृत्रिम रूप से उत्पादित किया जा सकता है जो कि कीट नियंत्रण के सर्वोत्तम विकल्प प्रदान कर सकते हैं। कीट रोगजनक संभावित रूप से मूल्यवान आईपीएम उपकरणों का एक समूह बनाते हैं जो चयनात्मक होते हैं और आम तौर पर पर्यावरण के लिए सुरक्षित होते हैं। माइक्रोबियल कीटनाशकों की क्रिया का तरीका अलग–अलग होता है। बैक्टीरिया और वायरस के प्रभावी होने के लिए कीटो द्वारा इनका सेवन करना आवश्यक होता है जबकि कवक और निमेटोड कीटो में त्वचा के माध्यम से प्रवेश कर सकते हैं। इन्हे सिंथेटिक कीटनाशक की तुलना में अधिक पर्यावरण अनुकूल माना जाता है। बैसिलस थुरिंजिएन्सिस (बीटी टॉक्सिन) के विष को आनुवंशिक इंजीनियरिंग के उपयोग के माध्यम से सीधे पौधों में शामिल किया गया है। एंटोमोपैथोजेनिक कवक का उपयोग विभिन्न कीटो में रोग उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। इसमें सामान्यतः ब्यूवेरिया बैसियाना, मेटारिजियम स्पी. की कवक का उपयोग किया जाता हैं। इसके अलावा पादप रोगो को नियंत्रित करने के लिए भी ट्राइकोडर्मा स्पी. एवं बैसिलस सबटिलिस का उपयोग किया जाता है। लाभकारी निमेटोड का उपयोग भी कीटो पर हमला करने के लिए किया जाता है। (उदाहरण के लिए स्टीनरनेमा फेल्टिया) इसके अलावा एंटोमोपैथोजेनिक वायरस (एनपीवी) का उपयोग भी कीटो की संख्या को कम करने के लिए किया जाता है।

आईपीएम में जैव–कीटनाशक और जैव–नियंत्रण के कुछ सफल उदाहरण

1890 में ऑस्ट्रेलिया में आइसेरिया परचेसी (कॉटन कुशन स्केल) को नियंत्रित करने के लिए एक शिकारी कीट रोडोलिया कार्डिनलिस (वेदालिया बीटल) का उपयोग करना जैव–कीटनाशक और जैव–नियंत्रण के सबसे शुरुआती सफलताओं में से था। 1972–73 के दौरान पंजाब, हरियाणा, यूपी राज्यों में गन्ना पाइरिला का भयंकर प्रकोप हुआ। जिसे एग पैरासिटॉइड टेट्रास्टिचस पाइरिल्ला और निम्फलप्रेडेटर एपिपाइरोप्स मेलानोल्यूका जैसे जैव नियंत्रण एजेंटों के उपयोग द्वारा सफलतापूर्वक नियंत्रित किया गया था। सेब वूली एफिड (एरीओसोमे लैनिगरम) और संजोस स्केल (क्वाड्रास्पिडिओटस पर्निशियोसस) सेब के पौधों के इन दो खतरनाक कीटों को उनके बायोएजेंट जैसे एफेलिनुस माली, सिरफस कॉनफ्रेटर, क्राइसोपा स्केलेस्टेस आदि द्वारा नियंत्रित किया गया। जलीय खरपतवार, जलकुंभी (इचोर्निया क्रैसिप्स) को भारत के दक्षिणी राज्यों में इसके दो विदेशी फाइटोफैगस वीविल्स यानी नियोचेतिना इचोर्निया और एन. ब्रुची के माध्यम से सफलतापूर्वक नियंत्रित किया गया था। भारत में कपास, दालें, सब्जियाँ, तिलहन आदि पर आक्रमण करने वाले बहुभक्षी कीट हेलिकोवरपा आर्मिजेरा को भी न्यूक्लियर पॉलीहाइड्रोसिस वायरस (एनपीवी) के उपयोग से सफलतापूर्वक प्रबंधन किया गया।

जैव–कीटनाशकों के विकास को प्रभावित करने वाले कारक

- प्रभाव में कम स्थिरता के कारण कम विश्वसनीयता
- लक्षित विशिष्टता जो कि किसानों को विचलित करती है
- संश्लेषिक कीटनाशकों की तुलना में धीमी क्रिया
- छोटी जीवनावधि
- बाजार में जैव कीटनाशकों की अस्थिर उपलब्धता
- रासायनिक कीटनाशकों के पहले से ही स्थापित और मजबूत बाजार
- रासायनिक कीटनाशकों के लिए अनुकूल विनियामक प्रणाली

जैव कीटनाशकों का उपयोग करने के लाभ

कृषि और सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों में जैव कीटनाशकों का उपयोग करने के संभावित लाभ विचारणीय हैं। जैव–कीटनाशकों में अवशिष्ट समस्या नहीं होती है जो कि उपभोक्ताओं के लिए महत्वपूर्ण विषय है। आईपीएम के एक घटक के रूप में, जैव–कीटनाशकों की प्रभावकारिता परंपरागत कीटनाशकों के बराबर हो सकती है। प्रदर्शन और पर्यावरण सुरक्षा के संयोजन से, जैव कीटनाशक न्यूनतम आवेदन प्रतिबंध के लचीलेपन, और बेहतरीन प्रतिरोध प्रबंधन क्षमता के साथ प्रभावी ढंग से प्रदर्शन करते हैं। जैव कीटनाशकों में रुचि उत्पादों के साथ जुड़े फायदे पर आधारित है, जो इस प्रकार हैं :

- स्वाभाविक रूप से कम हानिकारक और पर्यावरण सुरक्षित
- लक्ष्य विशेष
- अक्सर रासायनिक कीटनाशकों की तुलना में बहुत कम मात्रा में प्रभावी
- प्राकृतिक रूप से और जल्दी से विघटित होने मैं सक्षम
- आईपीएम के एक घटक के रूप में उपयोग करने योग्य

एजोटोबैक्टर : एक उपयोगी जैव उर्वरक

आशा कुमारी, विकास शर्मा एवं ए. के. शर्मा
कृषि महाविद्यालय, बीकानेर, एस. के. राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर- 334006

एजोटोबैक्टर आमतौर पर गतिशील, अंडाकार या गोलाकार जीवाणु की एक प्रजाति है जो मोटी दीवार (कठोर परत) वाली सिस्ट बनाती है जो बड़ी मात्रा में कैप्सुलर का उत्पादन कर सकती है। सूखी मिट्टी में, एजोटोबैक्टर 24 वर्षों तक सिस्ट के रूप में जीवित रह सकता है। लम एरोबिक, मुक्त–जीवित मिट्टी के सूक्ष्मजीव हैं जो प्रकृति में नाइट्रोजन चक्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, वायुमंडलीय नाइट्रोजन को बांधते हैं, जो पौधों के लिए आवश्यक है, और इसे अमोनियम आयनों (नाइट्रोजन स्थिरीकरण) के रूप में मिट्टी में छोड़ देते हैं । इसका उपयोग मनुष्यों द्वारा जैव उर्वरक, खाद्य योजक और कुछ जैव बहुलक के उत्पादन के लिए किया जाता है । सबसे पहले प्रतिनिधि, एजोटोबैक्टर क्रोकोकोकम की खोज और वर्णन 1901 में डच माइक्रोबायोलॉजिस्ट और वनस्पतिशास्त्री मार्टनस बेजरिनक द्वारा किया गया था जो ताजे पानी और खारे दलदल सहित जलीय आवासों में भी पाए जाते हैं। एजोटोबैक्टर प्रजातियाँ ग्राम–नकारात्मक बैक्टीरिया हैं जो तटस्थ और क्षारीय मिट्टी, पानी में और ठंडी जलवायु, कम बढ़ते मौसम और इन मिट्टी के अपेक्षाकृत कम पीएच मान के बावजूद, वे आर्कटिक और अंटार्कटिक मिट्टी में कुछ पौधों के मूल परिवेश में पाए जाते हैं, जिनका पौधों के साथ कुछ निश्चित संबंध होता है। कुछ उपभेद केंचुए (एइसेनिया फेटिडा) के कोकून में भी पाए जाते हैं ।

एजोटोबैक्टर कुछ जैविक रूप से सक्रिय पदार्थों को भी संश्लेषित करता है, जिसमें ऑक्सिन जैसे कुछ फाइटोहोर्मोन भी शामिल हैं, जिससे पौधों की वृद्धि उत्तेजित होती है। साथ ही मिट्टी में भारी धातुओं की गतिशीलता को भी सुविधाजनक बनाते हैं, इस प्रकार कैडमियम, पारा और सीसा जैसी भारी धातुओं से मिट्टी के बायोरेमेडिएशन को बढ़ाते हैं। कुछ प्रकार के एजोटोबैक्टर क्लोरीन युक्त सुगंधित यौगिकों को भी बायोडिग्रेड कर सकते हैं, जैसे 2,4,6– ट्राइक्लोरोफेनोल, जिसका उपयोग पहले कीटनाशक, कवकनाशी और शाकनाशी के रूप में किया जाता था, लेकिन बाद में इसमें उत्परिवर्तजन और कार्सनोजेनिक प्रभाव पाया गया।

आणविक नाइट्रोजन को ठीक करने और इसलिए मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने और पौधों के विकास को प्रोत्साहित करने की उनकी क्षमता के कारण, एजोटोबैक्टर प्रजातियों का व्यापक रूप से कृषि में उपयोग किया जाता है, विशेष रूप से एजोटोबैक्टीरिन जैसे नाइट्रोजन जैव उर्वरकों में। इनका उपयोग एल्गिनिक एसिड के उत्पादन में भी किया जाता है, जिसका उपयोग दवा में एंटासिड के रूप में, खाद्य उद्योग में आइसक्रीम, पुडिंग और क्रीम में एक योज्य के रूप में किया जाता है। पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने पर इसके लाभकारी प्रभाव के अलावा, एजोटोबैक्टर को पौधों के रोगजनक रोगों के दमन से भी जुड़ा हुआ माना जाता है। चूंकि एजोटोबैक्टर एक गैर–सहजीवी सूक्ष्मजीव है, इसलिए पौधों की उत्पादकता बढ़ाने की इसकी अधिकतम क्षमता इसके एकल अनुप्रयोग की तुलना में कुछ अन्य जैव उर्वरकों के साथ सह–टीकाकरण से समाप्त हो सकती है। बढ़े हुए खनिज अवशोषण के माध्यम से पौधों को सीधे लाभ पहुंचाने के अलावा, यदि कंसोर्टियम में उपयोग किया जाता है, तो एजोटोबैक्टर अन्य जैव उर्वरकों की लाभकारी गतिविधियों को भी तेज करता है। इसके अलावा, एजोटोबैक्टर की पौधों की वृद्धि गतिविधि को बढ़ाने वाले अन्य सूक्ष्मजीवों की रिपोर्ट भी उपलब्ध हैं।

क्र. सं	उपचार	विधि
1.	बीज उपचार	बीजोपचार विधि में में 10 प्रतिशत गुड़/चीनी (100 ग्राम गुड़/चीनी /1 लीटर पानी) का घोल बनाकर 15 मिनट तक अच्छे से गर्म कर ठंडा किया जाता है फिर इसमें एक पैकेट 200 ग्राम 8 से 10 किलोग्राम बीजो के लिए एजोटोबैक्टर कल्चर के साथ अच्छे से मिलाकर बीजो के ऊपर एक परत चढ़ाकर चाय में सुखाकर जल्दी ही बीजों की बुवाई की जाती है।
2.	पौध जड़ उपचार	पौध जड़ उपचार की इस विधि में धान तथा सब्जिओं की पौध को रोपाई करने से पहले एजोटोबैक्टर कल्चर के एक पैकेट (200 ग्राम) 15 से 20 लीटर पानी तथा साथ में गोंद/गुड़ मिलाकर पौध की जड़ों को 5 मिनट तक डुबाकर बुवाई कर जाती है।
3.	कम्पोस्ट उपचार	कम्पोस्ट उपचार की इस विधि में एजोटोबैक्टर कल्चर के एक पैकेट (200 ग्राम) को 10 से 15 किलोग्राम कम्पोस्ट के साथ अच्छे से मिलाकर सारी रात रखने के बाद बीजों की बुवाई के साथ मिट्टी में मिलाया जाता है।

एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक से लाभ

- एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक ऐसे कार्बनिक अम्लों को स्रावित करता है जैसे इन्डोल एसिटिक एसिड, जिब्रेलिन, विटामिन, एन्जाईम आदि, जो पौधों की अच्छी बढ़वार में सहायक होता हैं।
- एजोटोबैक्टर सूक्ष्मजीव विविध कार्यों को प्रदर्शत करता है, जो जैव उर्वरक, जैव नियंत्रण कारकों और जैविक कवकनाशी के रूप में कार्य करता है।
- ये पौधों के जड़ क्षेत्र में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने में सहायता करते हैं ।
- ये पौधों की वृद्धि एवं उत्पादकता में 25 तक वृद्धि करता है।

सावधानियाँ

- एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक का भण्डारण ठंडे एवं शुष्क, छायादार स्थान पर करना चाहिए।
- एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक उपचारित बीजों को छायादार स्थान पर सुखाना चाहिए।
- एजोटोबैक्टर फसल के अनुसार ही जैव उर्वरक का चुनाव करना चाहिए।
- एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक खरीदते समय उर्वरक का नाम, बनाने की तिथि व फसल का नाम इत्यादि ध्यान रखना चाहिए।
- एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक से उपचारित करने के पश्चात बीजों पर किसी रासायनिक उत्पाद का उपयोग नही करना चाहिए।
- एजोटोबैक्टर जैव उर्वरक का प्रयोग समाप्ति की तिथि के बाद नही करना चाहिए।

❋❋❋

बेल (एगल मार्मेलोस) के औषधीय उपयोग

भुवनेश नागर, गगनदीप सिंह, भूरी सिंह एवं राजेश कुमार
कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

एगल मार्मेलोस (एल.), जिसे आमतौर पर बेल के नाम से जाना जाता है एवं रूटेसी परिवार से संबंधित है। बेल उत्तरी भारत का मूल निवासी है लेकिन इसके पेड़ प्राकृतिक रूप से भारत के अलावा दक्षिणी नेपाल, श्रीलंका, म्यांमार, पाकिस्तान, बांग्लादेश, वियतनाम, लाओस, कंबोडिया एवं थाईलैंड में व्यापक रूप से पाया जाता है। यह पेड़ भारत में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु के सूखे जंगलों में पाया जाता है। बेल को अलग–अलग भाषाओं में अलग–अलग नाम से जाना जाता है जैसे संस्कृत में बिल्वा, शिवफला, उड़िया में बेलो, असमिया और मराठी में बेल, और भारत में तमिल में विल्वा मारुम, सिंहली में बेली, थाई में माटूम, स्पेनिश में बेला। बेल विभिन्न प्रकार की बंजर भूमि (ऊसर, बीहड़, खादर, शुष्क एवं अर्धशुष्क) में उगाया जा सकने वाला औषधीय गुणों से भरपूर फल है।

विभिन्न औषधीय गुणों के कारण इस वृक्ष का इतिहास वैदिक काल में भी मिलता है। हिंदू धर्म में प्राचीन काल से बेल को 'श्रीफल' के नाम से जाना जाता है। बेल के फलों में उच्च पोषण संरचना जैसे खनिज (फॉस्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, तांबा, जस्ता, क्रोमियम), वसा, फाइबर (हेमिकेलुलोज, सेलूलोज, लिग्निन, पेक्टिन), प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन (बी1 , बी2 , बी3 , सीऋ, अमीनो एसिड (थ्रेओनीन, वेलिन, मेथियोनीन, आइसोल्यूसीन, ल्यूसीन, लाइसिन) और फैटी एसिड की वजह से भारतीय चिकित्सा की स्वदेशी प्रणालियों में व्यापक रूप से उपयोग किया गया है।

यह एक मध्यम से बड़े आकार का पर्णपाती चिकना और कांटों से युक्त होता है। इसके तने की छाल मुलायम, हल्के भूरे रंग से पीले रंग की होती है तथा पत्तिया 2.5 सेमी लंबे वैकल्पिक ट्राइफोलिएट एवं इसके फूल हरे और सफेद रंग के होते हैं। बेल के पेड़ में फूल और फलकाल फरवरी से जुलाई तक होता है। इसके फल गोलाकार, अण्डाकार, भूरे या पीले रंग एवं 5–17 सेंटीमीटर व्यास के होते हैं। पकने पर हरे से सुनहरे पीले रंग का हो जाता है जिसे तोड़ने पर मीठा रेशेदार सुगंधित गूदा निकलता है। इस गूदे में छोटे, बड़े कई बीज होते हैं। पारंपरिक चिकित्सा प्रणालियों में प्रमुख उपचार के रूप में हर्बल औषधियों का उपयोग हजारों वर्षों से चिकित्सा पद्धति में किया जाता रहा है और इसने मानव स्वास्थ्य को बनाए रखने में महान योगदान दिया है फल को ताजा या सुखाकर खाया जाता है। पेय बनाने के लिए रस को छानकर मीठा किया जाता है।

पारंपरिक उपयोग

आयुर्वेद और पारंपरिक चिकित्सा पद्धति में बेल के पेड़ के प्रत्येक भाग में विभिन्न रोगों को ठीक करने की क्षमता पाई जाती है।

पत्ता : पीलिया, अस्थमा के उपचार में यह बहुत उपयोगी पाया गया है। बेल की पत्तियां ब्रोन्कियल ट्यूबों से श्लेष्म स्राव को हटाने में, कब्ज, बहरापन और ल्यूकोरिया के इलाज में भी उपयोगी पाया गया है।

फल : फलों के अर्क से थायराइड पेचिश क्रोनिक गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल विकार, बवासीर का इलाज और मलाशय की सूजन को ठीक करने में उपयोगी पाया गया है। इसका उपयोग एंटीस्कोरब्यूटिक और स्टोमैटिक एजेंट के रूप में किया जा सकता है। आंतों के अल्सर के साथ–साथ पुरानी कब्ज और अपच संबंधी समस्याएं भी ठीक हो सकती हैं। फोड़े को ठीक करने में कच्चे फल के गूदे का चूर्ण बहुत उपयोगी होता है।

फूल : फूल में एंटीसेप्टिक गुण होने की वजह से उपयोग मिर्गी में किया जाता है साथ ही घाव भरने में बेल के फूल के अर्क का उपयोग किया जाता है। जड़ और छालरू जड़ और छाल का काढ़ा उदासी, दिल की धड़कन और मियादी बुखार के साथ–साथ च्यवनप्राश की सामग्री में भी उपयोग किया जाता है।

बेल के औषधीय गुण

- **पेट सम्बंधी रोग एवं पाचन शक्ति को मजबूत करना :** बेल के पके हुए फल विटामिन सी, बी6 , बी12 , पोटैशियम, फाइबर, कैल्शियम, आदि होते हैं जो पाचन शक्ति मजबूत होती है और गैस, अपच, कब्ज, बदहजमी आदि से छुटकारा मिलता है। और यह अपच, खट्टी डकार, उलटी, बदहजमी, दस्त और उल्टी जैसी गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल समस्याओं को दूर करता है। यह पेट में अम्लता के स्तर को हल करता है।
- **बुखार के इलाज में :** बेल पेड़ के पत्तों का रस पीने से बुखार में आराम मिलता है और शरीर का तापमान कम होता है।
- **दस्त और पेचिश के इलाज में :** दस्त और पेचिश के इलाज में बेल का सेवन करना सबसे ज्यादा फायदेमंद माना जाता है। विशेषकर आधे पके या कच्चे फल के उपयोग से क्रोनिक डायरिया का इलाज किया जा सकता है। सूखे बेल फल का पाउडर इस उद्देश्य के लिए सबसे अच्छा है। कच्चे फलों के गूदे में एंटरोटॉक्सिन के विरुद्ध संभावित गतिविधि होती है। यह आंत उपकला से कॉलोनी गठन को भी रोक सकता है। बेल का रस, कच्चे फल का पानी का अर्क, सूखे फल का गूदा और बेल की पत्ती में दस्त–विरोधी गतिविधि होती है।
- **जीवाणुरोधी गुण :** बेल पेड़ के पत्तों, फलों और छाल में एंटीबैक्टीरियल गुण की वजह से संक्रमण से लड़ने में मदद कर सकते हैं।
- **जुड़ों के दर्द में :** बेल के पत्तों और फलों में एंटीऑक्सिडेंट गुण जोड़ों के दर्द को कम करने में मदद करते हैं।
- **खांसी और सर्दी में :** बेल के पत्तों में एंटीबैक्टीरियल गुण सामान्य सर्दी और खांसी से लड़ने में मदद करते हैं।
- **मधुमेह के इलाज में :** बेल के अर्क में मौजूद एंटीऑक्सीडेंट गुणों के कारण इसका मौखिक सेवन या इंजेक्शन द्वारा उपयोग करने पर सीरम इंसुलिन स्तर को बढ़ाता है और रक्त शर्करा का स्तर कम होता है बेल पेड़ के पत्तों को बारीक पीस कर तथा पानी में मिलाकर दवा की तरह इस्तेमाल किया जाता है।
- **हृदय स्वास्थ्य के लिए :** बेल के पत्ते के अर्क में मौजूद सैपोनिन और कूमारिन कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करता है। बेल के ताजे पत्तों का ज्यूस नियमित सुबह के समय सेवन करना कोलेस्ट्रोल व हृदय रोगों के लिए यह बहुत ही उपयोगी माना जाता है।
- **गुदा रोगों के इलाज में :** बेल के फल में एंटी–बैक्टीरियल गुण होते हैं जो गुदा रोगों जैसे पाइल्स और बवासीर के इलाज में मदद करते हैं।
- **श्वसन संबंधी बीमारियों के लिए :** बेल के फल में एंटीऑक्सिडेंट गुण होने की वजह से अस्थमा जैसी श्वसन संबंधी बीमारियों के इलाज में मदद करते हैं।
- **अलसर के लिए :** बेल पेड़ की पत्तियों को पीसकर पेस्ट बना कर अलसर वाले क्षेत्र पर भाग पर लगाने से अलसर के इलाज में बहुत ही उपयोगी माना जाता है।
- **सुखी और त्वचा संबंधी बीमारियों के लिए :** बेल के फल में विटामिन सी, एंटीअश्वक्सिडेंट और एंटीइंफ्लेमेट्री गुण त्वचा को स्वस्थ बनाए रखने में मदद करते हैं।
- **ब्लड प्रेशर के लिए :** बेल के फलों में पोटेशियम होता है जो ब्लड प्रेशर को नियंत्रित करने में मदद करता है।
- **कैंसर रोधी गतिविधि :** बेल में मौजूद कैरोटीनॉयड, फाइटोकेमिकल्स, पॉलीफेनोल्स में कोशिका उत्परिवर्तन को कम करने की क्षमता होती है।
- **आंखों के रोग के लिए :** बेल के पत्तों पर घी लगाकर और पत्तों के रस को आंखों में डालने से, या इसके पत्तों का आंखों पर लेप लगाने से आंखों में जलन और खुजली रोग दूर होते हैं।
- **सिर दर्द के लिए :** बेल के पत्ते का पेस्ट बना कर मस्तक पर लेप करने से सिर दर्द को कम करने में मदद करता है।

❋❋❋

पौषण सुरक्षा हेतू राजगिरा (ऐमारैंथस स्पें.) की उन्नत खेती

हरफूल मीणा, सुश्री मनोज, भैरु लाल कुम्हार एवं राजेन्द्र कुमार यादव

कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि महाविद्यालय, जोबनेर, जयपुर एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, मंडोर, जोधपुर (राजस्थान)

राजगिरा (ऐमारैंथस स्पें.) एक स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक खाद्यान्य होता है इसे आम भाषा में अनारदाना, राम दाना, चुआ, राजरा बाथू , चौलाई और मारचू कहा जाता है। यह एक ऐमारैंथस एल. प्रजाति का वार्षीक पौधा है जो की इसका पारिवारिक नाम ऐमारैंथसी से जाना जाता हैं। राजगिरा के बीज छोटे–छोटे होते हैं, जब बीज पक जाते हैं, तो पौधों को काटकर इन्हें बाहर निकाला जाता है। पोषक अनाज की यह फसल किस्मों के अनुसार 80 से 120 दिनों के अंदर पककर तैयार हो जाती है, इस लिये कम समय में यह किसानों को काफी अच्छा मुनाफा दे सकती है। भारत में किसानों को अब गेहूं जैसी पारंपरिक फसलों के बजाय मोटे अनाजों की खेती करने के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा है। आमतौर पर ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी, कोदो आदि मोटे अनाजों का नाम सुना है, लेकिन इन से ज्यादा फायदेमंद एक पोषक अनाज हमारे बीच मौजूद है। जिसकी खेती भारत के उत्तरी भाग के साथ–साथ राजस्थान में भी की जाने लगी हैं। आज राजगिरा के नाम से तो हम अंजान है, लेकिन रेडीमेड फूड के साथ साथ बिस्कुट, केक, पेस्ट्री जैसे बेकरी उत्पादों में इसका काफी उपयोग किया जाता है। राजगिरा को व्रत एवं उपवास के दौरान मुख्य रुप से उपयोग में लिया जाता है यह एक बहुत ही प्राचीन खाद्य पदार्थ है। इसके बीज को लडडू बनाने में उपयोग किया जाता है, जिसे सामान्य भाषा में चौलाई के लडडू भी कहा जाता है। वहीं इसके बीजों को चिक्की, लाहारी खिचड़ी, खीर और पैन केक बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। राजगिरा के आटे को रोटी बनाने के लिए उपयोग किया जाता है, इसके साथ ही इस आटे से पूरी, कचौरी, ब्रेड, डोसा इत्यादि बहुत सी चीजें बनाई जाती हैं, इनके अतिरिक्त राजगिरा के आटे को हलवा बनाने के लिए भी उपयोग में लाया जाता है। राजगिरा के आटे को चावल के आटे के साथ या फिर कुट्टू के आटे के साथ मिलाकर स्वादिष्ट पकवान भी बनाए जा सकते हैं।

राजगिरा का उपयोग करने पर कैंसर जैसी बीमारी को दूर कीया जा सकता है, इसमें असंतृप्त वसीय अम्ल और घुलनशील फाइबर होता है जो हृदय के लिए भी अच्छा है साथ ही हड्डियों की बीमारी से भी निजात दिलाने में सहायक होता है। व्रत उपवास के दिनों में इसका सेवन करने से व्यक्ति के शरीर में सभी पौष्टिक तत्वों की पूर्ति होती रहती है तथा स्फूर्ति भी बनी रहती है, इसलिए व्रत उपवास में रामदाना का बहुतायत में उपयोग किया जाता है। ग्लूटेन फ्री – रामदाने के आटे में ग्लूटेन न होने से यह उन लोगों के लिए भी बहुत फायदेमंद है जिन्हें ग्लूटन से एलर्जी है या जो लोग इसका सेवन नहीं कर सकते हैं। राजगिरा के दानों में 12-19 % प्रोटीन, 63% कार्बोहाइड्रेट्स एवं 5.5 % लाइसिन पाया जाता है। यह आयरन, बीटा केरोटिन और फोलिक एसिड का बहुत अच्छा स्रोत है, बालों की समस्या से लेकर कॉलेस्ट्रॉल मजबूत करने में राजगिरा का अहम योगदान होता हैं।

मृदा और जलवायु

पर्वतीय क्षेत्रों में राजगिरा की खेती लगभग बारहमासी की जाती है, लेकिन मैदानी क्षेत्रों में अक्टूंबर से नवंबर तक का समय इसकी बुवाई के लिये सबसे उपयुक्त रहता है। राजगिरा एक शितोष्ण और नम जलवायु में उगने वाला पौधा है, हालांकि सूखा की स्थिति में भी इसकी खेती करके काफी अच्छा उत्पादन ले सकते हैं। जल भराव और तेज हवा वाले क्षेत्रों में इसकी फसल लगाने से काफी नुकसान होता है। राजगिरा की खेती 1500–3000 मीटर तक की ऊंचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रो में कृषकों के लिए किसी वरदान से कम नहीं होती। इसकी खेती से अच्छा उत्पादन लेने के लिये मृदा की जांच जरूर करवानी चाहिये, 6-7.5 पी एच मान वाली बलुई दोमट मृदा राजगिरा की खेती के लीए अच्छी रहती हैं। इसकी फसल को खरपतवार मुक्त बनाने के लिये गहरी जुताई करके मृदा को भुरभुरा बनाया जाता है और खरपतवारनाशी दवा मिलाकर खेत को तैयार करते हैं।

उन्नत किस्में

आर एम ए 4 , आर एम ए 7 , पूसा किरण, पूसा लाल चौलाई, पूसा कीर्ति और राजगिरा 1 ।

बुवाई व बीज दर

राजगिरा की बुवाई के लिये प्रति हेक्टेयर 2.0 से 3.0 किग्रा बीज की दर पर्याप्त रहती है। राजगिरा की बुवाई के लिए कतार से कतार के बीच की दूरी 30 से 45 सेंटी मीटर और पौधे से पौधे के बीच की दूरी 10 से 15 सेंटी मीटर रखना उचित रहता हैं। बुवाई करते समय इसके बीज की गहराई 2.0 सेंटी मीटर तक रखना उचित रहता हैं।

खाद व उर्वरक

राजगिरा की फसल से अच्छा उत्पादन लेने के लीए फसल में समय पर उचित पोषक तत्व प्रबंधन करना आवश्यक रहता हैं। इसके लिये प्रति हेक्टेयर 8–10 टन अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद व उर्वरक 60

किग्रा. नत्रजन, 40 किग्रा फॉस्फोरस एवं पोटाश 20–25 किलो की मात्रा को खेत में डालें। ध्यान रखें कि नत्रजन की आधी मात्रा को पहली सिंचाई के बाद खेत में डाल देवें व राजगिरा की अच्छी पैदावार लेने के लीए वर्मी कंपोस्ट और जीवामृत उपयोग भी कर सकते हैं।

निराई–गुड़ाई

राजगिरा की फसल से अच्छी पैदावार लेने के लीए समय पर उचित खरपतवार प्रबंधन करना आवश्यक रहता हैं। इस फसल में खरपतवारों की काफी संभावना रहती है, ऐसे में फसल की बुवाई के 15 से 20 दिन पश्चात प्रथम निराई – गुड़ाई और 35 से 40 दिन पश्चात दूसरी निराई गुड़ाई अवश्य करें। खरपतवारों को जड से उखाड़कर खेत से बाहर डाले या मृदा में नमी को संरक्षित करने के लीए उखाडे हुए खरपतवारो को पलवार के रूप में उपयोग लेवे।

सिंचाई

राजगिरा की फसल मात्र 4–5 सिंचाईयों में पककर तैयार हो जाती है, इसमे प्रथम सिंचाई बुवाई के 5 से 7 दिन बाद करे। इसके पश्चात 15 से 20 दिन के अंतराल पर बाकी सिंचाई करते रहे। वैसे राजगिरा की फसल कम पानी में ही पककर तैयार हो जाती है, इसलिये कृषक मृदा की आवश्यकतानुसार ही फसल में सिंचाई करें।

कीट और बीमारी

राजगिरा की फसल में बग, कैटर पिल्लर और तना घुन आदी प्रमुख कीट फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। इसमें झुलसा व विषाणु रोग का प्रकोप रहता है, इनका समय पर प्रबन्धन करने हेतू अनुशंसित उर्वरकों की मात्रा, कीटनाशक व रोगनाशी का प्रयोग करें।

कटाई और उत्पादन

राजगिरा की फसल का उचित प्रबंधन कार्य करने पर यह 120 से 135 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। जब फसल की पत्तियां पीली पड़ जाये तो कटाई शुरू कर देवे व फसल की समय पर कटाई करना अति आवश्यक रहता हैं, क्योंकि इसके दाने काफी नाजुक होते हैं, जो देर से कटाई करने पर झड़ जाते हैं जिससे इसका उत्पादन कम हो जाता है। राजगिरा की खेती करके प्रति हेक्टेयर 14 से 16 क्विंटल तक उपज प्राप्त कर सकते हैं, जिससे कृषकों को काफी अच्छी आमदनी हो सकती हैं।

राजगिरा के फायदे

राजगिरा के बीज पकने के बाद पौधों को काटकर निकाल दिया जाता है। राजगिरा का उपयोग बड़े पैमाने पर लडडू व चाशनी में डूबोकर चिक्की बनाने के लिए किया जा सकता है। राजगिरा में बहुत से पोषक तत्व और खनिजों का समावेश होता है। इसमें अच्छी मात्रा प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फाइबर व शुगर होता है। इसके अलावा विटामिन सी, विटामिन–बी, आयरन, कैल्शियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस, सोडियम, जिंक, थायमिन, राइबोफ्लेविन, नियासिन आदि मौजूद होता है। यह स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में राजगिरा बहुत उपयोगी होता है।

हड्डियों के लीए फायदेमंद

हड्डियों से जुडी समस्या आमतौर पर हड्डियों की कमजोरी की के कारण होती है। राजगिरा में कैल्शियम की अच्छी मात्रा होती है जो हड्डियों को मजबूत करने में फायदेमंद रहता है। यदि हड्डियों में कमजोरी होने से गठिया व ऑस्टियोपोर्सस बीमारी होने का खतरा बना रहता है। इस समस्या से बचने के लिए राजगिरा का सेवन करना फायदेमंद रहता हैं।

डायबिटीज पर नियंत्रण

डायबिटीज को नियंत्रण करने के लीए राजगिरा उपयाग करना एक अच्छा घरेलू उपचार है। राजगिरा में अच्छी मात्रा में एंटी–इंफ्लेमेंटरी गुण मौजूद होता जो शरीर के सूजन को कम करने में लाभकारी होता है। राजगिरा के तेल का सप्लीमेंट एंटीऑक्सीडेंट थेरेपी के रूप में काम कर सकता है, जो हाइपरग्लाइसीमिया (हाई ब्लड शुगर) को नियंत्रित करने और मधुमेह के जोखिम को रोकने में फायदेमंद साबित हो सकता है । पर्याप्त इंसुलिन की मात्रा के बिना खून में मौजूद अतिरिक्त ग्लूकोज टाइप 2 डायबिटीज का कारण बन सकता है। राजगिरा और राजगिरा के तेल का मिश्रण सीरम इंसुलिन की पर्याप्त मात्रा बढ़ा सकता है।

बालों के लिए फायदेमंद

बालों के गिरने व टूटने जैसी समस्या को कम करने में राजगिरा का उपयोग लाभकारी रहता है। इसमे प्रचुर मात्रा में जिंक मौजूद होता है जो बालों की जड़ों को मजबूत करने के साथ बालों को टूटने की समस्या को कम करता है। यदि बालों में अधिक खुजली व झड़ने की समस्या हो तो राजगिरा का उपयोग करना चाहिए।

सीलिएक रोग से बचाव

राजगिरा को ग्लूटेन फ्री डाइट के रूप में उपयोग किया जा सकता है। ग्लूटेन प्राकृतिक रूप से गेहूं, राई और जौ में पाया जाता है। ग्लूटेन की अधिक मात्रा का सेवन करने से सीलिएक रोग होने की समस्या रहती है। इस बीमारी से बचने के लीए राजगिरा सेवन करें।

शरीर की कोशिकाओं

प्रोटीन का उच्च स्रोत है जो शरीर की कोशिकाओं की मरम्मत करने और नई कोशिकाओं को बनाने के लिए आवश्यकता होता है। भोजन में राजगिरा को प्रोटीन के लीए बेहतरीन विकल्प के में रूप शामिल किया जा सकता है।

हृदय को स्वस्थ रखना

रक्त में बढ़ा हुआ कोलेस्ट्रॉल हार्ट अटैक सहित हृदय से सम्बन्धित कई अन्य रोगो को बढावा देता हैं। ब्लड कोलेस्ट्रॉल को नियंत्रित करने के लिए भोजन में राजगिरा का उपयोग करना लाभदायक रहता हैं। इसका तेल कुल कोलेस्ट्रॉल, ट्राइग्लि सराइड्स (रक्त में फैट), एलडीएल (खराब कोलेस्ट्रॉल) की मात्रा को कम कर सकता है।

कैंसर के जोखिम से बचाव

कैंसर के जोखिम से बचने के लिए राजगिरा का उपयोग लाभदायक रहता है। राजगिरा में उपयोगी एंटीऑक्सीडेंट होता है, जो इम्यून सिस्टम को मजबूत करने के साथ कैंसर से होने वाले खतरे को भी कम करता है। इसके अलावा, राजगिरा में विटामिन–ई पाया जाता है जो एक एंटीऑक्सीडेंट की तरह काम करता है, यह फ्री–रेडिकल्स से कोशिकाओं को बचाता है और साथ ही कई प्रकार के कैंसर के खतरे को भी रोकने में सक्रिय भूमिका निभाता है।

पाचन शक्ति

पाचन शक्ति को बढ़ाने में सहायक होता हैं क्योंकि इसमें फाइबर की प्रचुर मात्रा पायी जाती हैं। जो वजन को नियंत्रित करने में उपयोगी है।

आंखों की दृष्टि

आंखों की दृष्टि को ठीक रखने के लिए राजगिरा का सेवन लाभकारी रहता हैं। इसमें विटामिन–ए पाया जाता है, जो आंखों के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी रहता है। इसकी पूर्ति से बढ़ती उम्र के साथ होने वाली दृष्टि संबंधित समस्याओं को कम किया जा सकता है।

गर्भावस्था में लाभदायक

गर्भावस्था में मां को पोषण युक्त आहार की जरूरत होती है, राजगिरा को गर्भावस्था में बेहतरीन पोषण के रूप में शामिल किया जा सकता है। यह गर्भावस्था में कब्ज की समस्या से बचने के लिए फाइबर, एनीमिया के खतरे को दूर रखने के लिए आयरन और हड्डियों के स्वास्थ्य के लिए कैल्शियम की पूर्ति का काम करता है। इसके अलावा, गर्भावस्था में विटामिन–सी की पर्याप्त मात्रा जरूरी होती है, जो राजगिरा के सेवन से पूरी की जा सकती है।

त्वचा के लिए उपयोगी

इसमें मौजूद विटामिन–सी त्वचा के लिए उपयोगी माना जाता है, जो एक एंटीऑक्सीडेंट है, जिससे त्वचा को यूवी विकिरण से होने वाले नुकसान से बचा सकता है। इसके अतिरिक्त विटामिन–सी मुंहासों को दूर करने और त्वचा में कोलेजन को बढ़ाने में मदद करता हैं।

एनीमिया रोग का उपचार

एनीमिया एक ऐसी चिकित्सकीय स्थिति है, जो शरीर में लाल रक्त कोशिकाओं की कमी के कारण उत्पन्न होती है। राजगिरा आयरन से समृद्ध होता है जो लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन को बढ़ाने का काम करता है। यह एक आवश्यक पोषक तत्व होने से एनीमिया रोग से लड़ने में राजगिरा उपयोगी रहता हैं।

राजगिरा का अधिक उपयोग कराने से नुकसान

राजगिरा के बहुत से फायदे होते है, लेकिन राजगिरा का अत्यधिक मात्रा में उपयोग करने पर नुकसानदायक रहता हैं, क्योंकि इसमें फाइबर की मात्रा अधिक होती है। इस वजह से पेट में ऐंठन, दर्द व पेट फूलने की समस्या हो सकती है। राजगिरा में कैल्शियम की मात्रा अधिक होती है जो शरीर में हृदय रोग के जोखिम को बढ़ावा दे सकता है। जिन लोगो को बीपी व किडनी स्टोन की समस्या है उनको राजगिरा का सेवन कम मात्रा में करना चाहिए। इसका अत्यधिक उपयोग करने पर सेनक्रोनिक व कैंसर जैसी बीमारी को बढ़ावा मिलता है। राजगिरा की 20 से 50 ग्राम मात्रा को दिन में एक बार कर सकते हैं। राजगिरा के उपयोग करने का सही तरिका, इसका हलवा बनाकर खाये, मीठा कम खाने वाले लोग इसकी खिचडी बनाकर खाए, घी में भूनने के बाद इसे दूध के साथ उबालकर पिये, भूने हुए राजगिरा को चीनी की चाशनी से पट्टी बनाकर खाये, लड्डू बनाकर खाए, सूजी के रूप में गुझिया बनाकर खाये व खीर बना कर खाये। इसमें पोटेशियम उचित मात्रा में होता है जो शरीर के विकास के लीए एक महत्व पूर्ण खनिज लवण है। शरीर में इसके स्तर का सही संतुलन बनाए रखना बेहद जरूरी होता है।

बायोचार : मृदा को स्वस्थ बनाये रखने का जैविक एवं पर्यावरण हितैषी आयाम

राहुल चोपड़ा, अनिल कुमार गुप्ता एवं हेमराज छीपा
उद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड, कृषि विश्वविद्यालय कोटा

स्वस्थ मृदा अच्छी एवं टिकाऊ खेती के लिए प्रथम आवश्यकता है। क्योंकि स्वस्थ मृदा ही पेड़ पोधो की पोषक तत्वों की आवश्यकता की पूर्ति करती है। इसलिए कहा जाता है कि स्वस्थ मृदा ही फसल उत्पाकता का आधार है। परन्तु काफी समय से मृदा स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है जिसके परिणाम स्वरूप पर्यावरण प्रदूषण भी बढ़ता जा रहा है। जिसके दुष परिणाम आज हमारे सामने है। खाद्यान कि मांग पूरी हो सके इसलिए हमारे देश के किसानों ने सघन खेती को अपना लिया है। अधिक उत्पादन कि होड़ में किसान पूरी तरह से रासयनिक उर्वरको पर निर्भर है और उसने जैविक खादों का उपयोग करना बहुत कम कर दिया है या हम कह सकते है कि वह अपने खेत में जैविक खाद डालता ही नहीं है। जिस कारण मृदा कि उर्वरता क्षीण होती जा रही है, और रसायनों के अंधाधुंध उपयोग के दुष परिणाम हमारे सामने चुनौती बन कर खड़े है और इन चुनोतियो का समाधान करना बहुत जरुरी हो गया है।

जैसा कि हम सब जानते है कि पौधे अपने पोषण के लिए पोषक तत्वों को जैविक पदार्थो एवं मृदा खनिजों से लेते है। लगातार सघन खेती करने एवं रासायनिक उर्वरको का अधिक मात्रा में उपयोग करने से मृदा कि भौतिक, रासयनिक एवं जैविक गुणों का हास् हो रहा है। सघन खेती प्रणाली में किसान बिना मृदा प्रबंधन के खेती कर रहा है जिस कारण न तो उसे अच्छा उत्पादन मिल रहा है एवं मृदा स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। सघन खेती के दौरान किसान केवल रासायनिक उर्वरको का उपयोग करता है तथा जैविक खादों का उपयोग बहुत कम करता है। जैविक खादों का उपयोग न करने के कारण मृदा में जैविक कार्बन की कमी होती जा रही है जो कि पोधो को पोषण प्रदान करने का मुख्य आधार है। मृदा में जैविक कार्बन कि कमी होने के कारण पोधो को पूरा पोषण नहीं मिल पता है एवं मृदा में होने वाली बहुत सारी आवश्यक क्रियाएँ भी जैविक कार्बन न होने के कारण रुक जाती है।

जैसा की सभी को जानकारी है की मृदा में जैविक पदार्थ, मृदा गुणवत्ता एवं उर्वरता का सूचक होता है। इसलिए यह आवश्यक है की मृदा में अधिक से अधिक मात्रा में जैविक पदार्थो का संचय हो और यह तभी संभव है जब हमारा मृदा प्रबंधन सही होगा। लम्बे समय तक मृदा उर्वरता और मृदा गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए हमें फसल चक्र, उर्वरको का सही मात्रा में उपयोग, नविन शस्य क्रियाएँ एवं जैविक पदार्थो का समुचित उपयोग जैसे मृदा प्रबंधन के तरीको को अपनाना होगा। केवल यही तरीका जिस को अपना कर किसान भाई अच्छा उत्पादन प्राप्त कर सकते है और मृदा स्वास्थ्य को भी सही बना कर रख रख सकते है।

मृदा में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ाने के लिए जैविक पदार्थो का उपयोग एक महत्वपूर्ण तरीका है। अनेक जैविक संसाधन है जिनक उपयोग कर हम मृदा में जैविक कार्बन अंश बढ़ा सकते है उनमे से एक नया संसाधन है बयोचार।

बायोचार : यह काले रंग का, हल्का, महीन दानेदार, पोरस और कार्बन युक्त पदार्थ है जिसका निर्माण जैविक पदार्थो के ताप द्वारा अपघटन होने से होता है। बायोचार एक ऐसा उत्पाद है जिसमे जैविक कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटाश अन्य उत्पादों की तुलना में अधिक पाया जाता है।

बायोचार का मृदा गुणों पर प्रभाव

बायोचार के उपयोग से मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार होता है जो निम्न प्रकार से है।

भौतिक गुणों पर प्रभाव

1 मृदा के स्थूल घनत्व को कम करता है यानि मृदा को भुरभुरा बनाये रखने में सहायता करता है ।
2 मृदा सरंचना को सुधारता है ।
3 मृदा में जल धारण एवं पोषक तत्वों को धारण करने की क्षमता को बढ़ाता है ।
4 मृदा में वायु के संचार को बनाये रखने में सहायता करता है ।

रासायनिक गुणों पर प्रभाव

1 मृदा में कार्बन को संचय करता है ।
2 समस्याग्रस्त मृदायें जैसे लवणीय, क्षारीय को सुधारने में सहायता करता है ।
3 जिन मृदाओ में पोषकत तत्वों की कमी है उन्हें सुधारने में सहायता करता है ।
4 पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता को बढ़ाता है यानि पोषक तत्वों का विभिन्न माध्यमों से होने वाले नुकसान को रोकता है ।
5 मृदा अम्लीयता को कम करता है ।
6 मृदा उर्वरता को बढ़ाता है पोषक तत्वों के निक्षालन को रोकता है ।
7 मृदा जनित रोगो को कम करता है ।

जैविक गुणों पर प्रभाव

1 मृदा में लाभदायक सूक्ष्म जीवो की संख्या में वृद्धि करता है ।
2 विभिन्न एन्जाइमों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है ।
3 जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण को बढ़ाता है ।

बायोचार का पर्यावरण पर प्रभाव

किसानों द्वारा फसल की कटाई के बाद खेत को खाली करने के लिए बचे हुए अवशेषों को जला दिया जाता है ताकि समय पर अगली फसल की बुवाई की जा सकें। पाठक और उनके सहयोगियो (2006, 2010) के अनुसार भारत में 72–127 मेट्रिक टन फसल अवशेष खेतों में जलाए जाते हैं। खेतो में आग लगाने से कई समस्याएं उत्पन्न होती है जैसे पोषक तत्वों का नुकसान, मृदा के गुणों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जैसे तापमान अधिक होने की वजह से लाभदायक जीवाणु मर जाते है, पोषक तत्वों की कमी हो जाती है आदि। इसके आलावा वातावरण में ग्रीन हाउस गेसो की सांद्रता बढ़ जाती है जो की पर्यावरण के लिए नुकसानदायक है। चुंकी बायोचार बनाने के लिए बचे हुए फसल के अवशेषों का उपयोग किया जाता है जिस कारण उन्हें जलाया नहीं जाता है जिस वजह से पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुँचता है।

बायोचार की मात्रा

बायोचार की मात्रा कई कारको पर निर्भर करती है जैसे मृदा का प्रकार, फसल, फसल प्रणाली एवं बायोचार की उपलब्धता आदि। लकरिया और उनके सहयोगियो (2021) के अनुसार सामान्यतः 5.20 टन/हेक्टेयर बायोचार का उपयोग किया जा सकता है ।

बायोचार उपयोग करने का तरीका

चूँकि हर फसल प्रणाली में बायोचार को उपयोग करने का तरीका अलग होता है, इसलिए फसल प्रणाली को ध्यान में रखते हुए ही बायोचार का उपयोग किया जाता है । कुछ विशेष फसल प्रणाली के अनुसार बायोचार का उपयोग निम्न प्रकार से किया जाता है।

पारम्परिक फसल प्रणाली में उपयोग करने का तरीका

- ऊपरी मृदा में मिला दिया जाता है ।
- बुरकाव विधि द्वारा बुरकाव किया जा सकता है ।
- हैंड हो की सहायता से मृदा में 10.15 सेंटीमीटर गहराई में डाल सकते है ।
- उर्वरको के साथ मिला कर उपयोग किया जा सकता है ।

उद्यानिकी फसलों में उपयोग करने का तरीका

- ट्रांसप्लांटिंग के समय प्रत्येक पौधे में बायोचार डाला जाता है ।
- उठी हुई (रेज्ड बेड) क्यारी तैयार करते समय उपयोग किया जा सकता है ।

❋❋❋

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान एवं महत्व

लोकेश कुमार मीणा, सत्यनारायण मीणा, कमल चंद मीना एवं हेमंत गुर्जर

कृषि महाविद्यालय, उम्मेदगंज, कोटा

भारत में कृषि का इतिहास सिंधु घाटी सभ्यता से पहले का है, भारत कृषि उत्पादन में दुनिया भर में दूसरे स्थान पर है। कृषि प्रधान देश होने के नाते ना सिर्फ भारत की अर्थव्यबस्था में कृषि का अहम योगदान रहा है बल्कि भारत की लगभग 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर ही आश्रित है। अतः कृषि देश के तकरीबन करोड़ों लोगों को आजीविका सुरक्षा प्रदान करती है तथा देश के लगभग 52 प्रतिशत श्रमिकों को रोजगार की व्यवस्था करती हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का हिस्सेदारी भले ही मात्र 14 प्रतिशत है लेकिन देश की अर्थव्यवस्था में कृषि का एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि देश की एक अरब आबादी को जहां खाद्य सुरक्षा प्रदान करती है तो वहीं दूसरी ओर देश के कृषि आधारित उद्योग को कच्चे माल की व्यवस्था भी करती हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका

- भारत दुनिया में कपास का सबसे बड़ा निर्यातक है।
- भारत सब्जियों में अदरक, भिंडी, आलू, प्याज, बैंगन आदि का सबसे बड़ा उत्पादक है।
- सिक्किम दुनिया का पहला राज्य है जिसने 100 प्रतिशत जैविक खेती का दावा किया है।
- कृषि उत्पादन में भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। सेवा और उद्योग क्षेत्र में भारत की विश्व रैंक क्रमशः 9वीं और 5वीं है।

सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान

वर्ष	वर्तमान मूल्यों पर कुल अर्थव्यवस्था में कृषि और संबद्ध क्षेत्रों के जीवीए का हिस्सा (%)	कृषि और संबद्ध क्षेत्रों के जीवीए की वृद्धि (2011–12 की कीमतों पर) (%)
2020-21	20.3 %	4.1
2021-22	19.0%	3.5
2022-23	18.3	3.5

भारत के सकल घरेलू उत्पाद का वर्ष 2022 में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान वर्ष 2022 में भारत के सकल घरेलू उत्पाद में विभिन्न क्षेत्रों का योगदान इस प्रकार है:

- प्राथमिक क्षेत्र का अनुमान 21.82 प्रतिशत
- द्वितीयक का 24.29 प्रतिशत और
- तृतीयक क्षेत्र का भारत के सकल घरेलू उत्पाद में 53.89 प्रतिशत था।

सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के अनुसार शीर्ष दस देश यह विश्व बैंक के नवीनतम आंकड़ों पर आधारित है।

1) संयुक्त राज्य अमेरिका: + 20.89 ट्रिलियन
2) चीन: 14.72 ट्रिलियन डॉलर
3) जापान: + 5.06 ट्रिलियन
4) जर्मनी: + 3.85 ट्रिलियन
5) यूनाइटेड किंगडम: + 2.67 ट्रिलियन
6) भारत: 2.66 ट्रिलियन डॉलर
7) फ्रांस : + 2.63 ट्रिलियन
8) इटली : + 1.89 ट्रिलियन
9) कनाडा : + 1.64 ट्रिलियन
10) दक्षिण कोरिया : + 1.63 ट्रिलियन

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान एवं महत्त्व

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान एवं महत्त्व को हम निम्नलिखित रूप से स्पष्ट कर सकते है

- **बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों की पुष्टि :** आज देश की जनसंख्या जिस तरह से तेजी से बढ़ रही है आगे चलके इन जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों की मांग भी तेजी से बढ़ेगी अतः इस जनसंख्या को भोजन की व्यवस्था के लिए कृषि ही एक मात्र विकल्प हैं। अतः देश की इस जनसंख्या को खाद्यान्न की पूर्ति के लिए सघन कृषि पद्धतियो, जलवायु तथा मृदा के अनुकूल फसलों एवं उसकी प्रजातियों को उगा कर ही पूरी की जा सकती हैं। इस समस्या का समाधान विभिन्न प्रकार की फसले जैसे–धान, गेहूं, मक्का, ज्वार, दलहनी व तिलहनी आदि फसलों को उगा कर किया जा सकता हैं।
- विभिन्न उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ति रू भारत के प्रमुख उद्योगों को कच्चा माल कृषि से ही प्राप्त होता है। सूती, पटसन, वस्त्र उद्योग, चीनी, वनस्पति तथा बागानों उद्योग आदि प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर ही निर्भर हैं। हथकरघा, बुनाई, तेल निकालना, चावल कूटना आदि बहुत से लघु एवं कुटीर उद्योग भी किसी से ही कच्चा माल प्राप्त करते हैं।
- मनुष्य के लिए वस्त्रों की आपूर्ति रू मनुष्य की तीन आधारभूत आवश्यक आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान में वस्त्र का दूसरा महत्वपूर्ण स्थान है जिसके बिना मनुष्य का जीवन असंभव सा है। भारत का सबसे बड़ा उद्योग, कपडा उद्योग ही है तथा देश की अर्थव्यवस्था मे इसका महत्वपूर्ण योगदान है। इस उद्योग के लिए कच्चे माल की पूर्ति कृषि से ही संभव है जिसके लिए हम विभिन्न प्रकार की फसलें जैसे–जूट, कपास, सनई व अलसी आदि का उत्पादन करके इसकी पूर्ति करते हैं।
- **राष्ट्रीय आय का मुख्य स्रोत :** फसल उत्पादन द्वारा कृषकों की आय में वृद्धि होने के साथ कृषि उत्पादन से संबंधित विभिन्न कर जैसे– मालगुजारी, सिंचाई कर, उत्पादन कर आदि से राज्य व केंद्र सरकार को आय प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ फसलें जैसे– तंबाकू, जूट, चाय, चीनी,कहवा आदि के विदेशों मे निर्यात से राष्ट्र को काफी अधिक मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती हैं। भारत की आय

का सर्वाधिक अंश कृषि व उससे संबंधित व्यवसाय से ही प्राप्त होता है। 2021 के अनुसार, कृषि और संबद्ध क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 20.19 प्रतिशत हिस्सा हैं। जबकि 1950–51 मे यह योगदान लगभग 55.40 प्रतिशत था। भारत में कृषि एवं सहबद्ध क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद का 14.1 प्रतिशत भाग प्रदान करती है एवं इससे देश की 58.2 प्रतिशत कार्यकारी जनसंख्या एवं 15.3 प्रतिशत उपक्रमे लगी है। इससे देश का 12.4 प्रतिशत निर्यात होता है।

- आजीविका का मुख्य साधन रू हमारे देश के कुल जनसंख्या का लगभग 72.8 प्रतिशत जनसंख्या आज भी गांव में ही निवास करती है तथा अपने भरन–पोषण के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि या उससे संबंधित कृषि उद्योग से ही अपना आजीवीका चलाती है। सन् 1950–51 में भारत की कार्यशील जनसंख्या का लगभग 69.5 प्रतिशत कृषि और उससे संबंधित क्षेत्र में लगा हुआ था। कृषि नीजी क्षेत्र का सबसे बड़ा अकेला व्यवसाय है।

- **देश का सर्वाधिक भूमि उपयोग :** देश की कुल भूमि क्षेत्रफल का सर्वाधिक भाग कृषि में प्रयुक्त किया जाता है। कुल भूमि क्षेत्रफल के लगभग 48.05 प्रतिशत भाग में खेती की जाती है।

- **रोजगार में योगदान :** कृषि द्वारा व्यक्तियों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्राप्त होता हैं। प्रत्यक्ष रूप से उन व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होता है जो कृषि की विभिन्न क्रियाएं जैसे–फसल उत्पादन, खेतिहर, मजदूर आदि कार्य में लगे हुए हैं। तथा अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे व्यक्ति को रोजगार प्राप्त होता है जो कृषि आधारित उद्योग धंधों से जुड़े हुए हैं। अतः हम कह सकते है कि कृषि अनेको लोगों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों से रोजगार प्रदान करती हैं।

- **अंतरराष्ट्रीय व्यापार में कृषि का महत्व :** भारत के विदेशी व्यापार का महत्वपूर्ण भाग कृषि से जुड़ा है। भारत विश्व में कृषि उत्पाद के 10 अग्रणी निर्यातकों में है। विश्व में भारत का चाय, मूंगफली केला आदि उत्पाद में प्रथम स्थान है। जबकि चावल, जूट, कपास व गन्ना आदि के उत्पादन में विश्व के दूसरे स्थान पर है। लाख के उत्पादन में भारत विश्व का एकाधिकार की स्थिति में हैं।

- **कृषि का विदेशी व्यापार महत्व :** निर्यात और विदेशी मुद्रा अर्जन की दृष्टि से कृषि का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। देश के निर्यात व्यापार में चाय, पटसन, तम्बाकू, मसाले, तिलहन आदि कृषि उपज का विशेष महत्व है।

- **पशुओं के लिए चारे की उपलब्धता :** आधुनिक कृषि प्रणाली के अपनाने से कृषि पशु पर ही आश्रित है मशीनीकरण होने के बावजूद हमारे देश में अभी इन यंत्रों का प्रचलन कई विशिष्ट कारणों से होना संभव नहीं हो पा रहा है अतः इन पशुओं के लिए चारे की व्यवस्था कृषि के द्वारा ही संभव हैं।

- कृषि आधारित सहकारी समितियां –1947 के बाद से, जब देश को ब्रिटेन से स्वतंत्रता मिली, भारत ने सहकारी समितियों में मुख्य रूप से कृषि क्षेत्र में भारी वृद्धि देखी है। देश में स्थानीय, क्षेत्रीय, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर सहकारी समितियों के नेटवर्क हैं जो कृषि विपणन में सहायता करते हैं अनाज, जूट, कपास, चीनी, दूध, फल और मेवा ज्यादातर जिन वस्तुओं को संभालते हैं, वे हैं महाराष्ट्र राज्य में 1990 के दशक तक राज्य सरकार की सहायता से 25,000 से अधिक सहकारी समितियों की स्थापना की गई।

- चीनी का उद्योग रू भारत में चीनी का अधिकांश उत्पादन स्थानीय सहकारी समितियों के स्वामित्व वाली मिलों में होता है। सोसायटी के सदस्यों में मिल को गन्ने की आपूर्ति करने वाले छोटे और बड़े सभी किसान शामिल हैं। पिछले पचास वर्षों में, स्थानीय चीनी मिलों ने राजनीतिक भागीदारी को प्रोत्साहित करने और महत्वाकांक्षी राजनेताओं के लिए एक कदम के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

- **डेयरी उद्योग :** हरियाणा के फरीदाबाद में बनास डेयरी प्लांट, अमूल पैटर्न पर आधारित डेयरी फार्मिंग, एक एकल विपणन सहकारी के साथ, भारत का सबसे बड़ा आत्मनिर्भर उद्योग और इसका सबसे बड़ा ग्रामीण रोजगार प्रदाता है। अमूल मॉडल के सफल कार्यान्वयन ने भारत को दुनिया का सबसे बड़ा दूध उत्पादक बना दिया है। यहां छोटे, सीमांत किसान अपने छोटे कंटेनर से दूध को ग्राम संघ संग्रह बिंदुओं में डालने के लिए दिन में दो बार दो बार कतार में खड़े होते हैं। जिला संघों में प्रसंस्करण के बाद दूध को अमूल ब्रांड नाम के तहत राज्य सहकारी संघ द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर विपणन किया जाता है, भारत का सबसे बड़ा खाद्य ब्रांड। आनंद पैटर्न के साथ मुख्य रूप से शहरी उपभोक्ताओं द्वारा भुगतान की जाने वाली कीमत का तीन–चौथाई लाखों छोटे डेयरी किसानों के हाथों में चला जाता है, जो ब्रांड और सहकारी के मालिक हैं।

- **कच्चे माल के लिए :** कृषि आधारित उद्योगों के लिए विशेष रूप से विकासशील देशों में कच्चे माल की आपूर्ति में सुधार के लिए कृषि उन्नति आवश्यक है। कृषि वस्तुओं की कमी का औद्योगिक उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है और इसके परिणामस्वरूप सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि होती है। यह देश की अर्थव्यवस्था के विकास को बाधित करेगा। आटा, चावल के गोले, तेल और दाल मिल, ब्रेड, मांस, दूध उत्पाद, चीनी कारखाने, वाइनरी, जूट मिल, कपड़ा मिल और कई अन्य उद्योग कृषि उत्पादों पर आधारित हैं। इस तरह से कृषि क्षेत्र कई तरह से भारत की अर्थव्यवस्था में मदत करता हैं।

- **अर्थव्यवस्था में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका :** भारत में कृषि का इतिहास सिंधु घाटी सभ्यता से पहले का है, भारत कृषि उत्पादन में दुनिया भर में दूसरे स्थान पर है। उत्तर प्रदेश भारत में शीर्ष कृषि राज्य के अंतर्गत आता है और उत्तर प्रदेश की रैंक भारत में प्रमुख राज्यवार फसल उत्पादन, बाजरा, चावल, गन्ना, खाद्यान्न, और कई अन्य के तहत गिना जाता है। यह भारत में शीर्ष गेहूं उत्पादक राज्यों के अंतर्गत आता है, इसके बाद हरियाणा, पंजाब और मध्य प्रदेश का स्थान आता है।

❋❋❋

जलवायु परिवर्तन का मानव जीवन एवं कृषि पर प्रभाव

सुनील कुमार यादव, बी. एल. कुम्हार एवं दुर्गा शंकर मीणा

भा.कृ.अनु.प.–कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचमहल एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र, मण्डोर, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

किसी स्थान का औसत मौसम उस स्थान की जलवायु कहलाता है। जलवायु लम्बे समय (तीन दशक से भी अधिक) के वायुमण्डीय दशाओं का औसत है और मौसम प्रतिदिन की वायुमण्डीय दशा को दर्शाता है। जलवायु परिवर्तन से अभिप्राय लम्बे समय (30 वर्ष के मौसम में बदलाव से है)। वायुमण्डलीय दशाओं के परिवर्तन से हम जलवायु परिवर्तन को समझ सकते है जैसे–ऋतुओं में अवांछनीय परिवर्तन जो पर्यावरण संतुलन को बिगाड़ रहा है। वर्षा की अनियमितता, तापमान का दिन–प्रतिदिन बढ़ना, वातारणीय आपेक्षिक आद्रर्ता में अचानक कमी और वृद्धि आदि दिन–प्रतिदिन के मौसम में बदलाव से ही हो रहे हैं और लम्बे समय का मौसम सार ही तो जलवायु है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है पृथ्वी पर जलवायु की परिस्थितियों में बदलाव होने को जलवायु परिवर्तन कहते हैं। यूं तो मौसम में अक्सर बदलाव होते रहते हैं, लेकिन जलवायु परिवर्तन केवल तभी घटित होता है जब ये बदलाव पिछले कुछ दशकों से लेकर सदियों तक कायम रहें। जलवायु परिवर्तन वास्तव में पृथ्वी पर जलवायु की परिस्थितियों में बदलाव को कहा जाता है। यह विभिन्न बाह्य एवं आंतरिक कारणों से होता है जिनमें सौर विकिरण, पृथ्वी की कक्षा में परिवर्तन, ज्वालामुखी विस्फोट, प्लेट टेक्टोनिक्स आदि सहित अन्य आंतरिक एव बाह्य कारण सम्मिलित हैं।

वास्तव में जलवायु परिवर्तन पिछले कुछ दशकों में विशेष रूप से लचता का कारण बन गया है। पृथ्वी पर जलवायु के स्वरूप में परिवर्तन वैश्विक लचता का विषय बन चुका है। जलवायु परिवर्तन के कई कारण होते हैं और यह परिवर्तन विभिन्न तरीकों से पृथ्वी पर जीवन को प्रभावित करता है। जलवायु परिवर्तन एक ऐसी समस्या है जो हमारे साथ ही साथ मौसम विज्ञानिकों के लिए भी सोचने का और चिन्ता करने का गंभीर विषय है। जलवायु परिवर्तन को गंभीर विषय मानने के लिए क्या हम किसी त्रासदी का इन्तजार कर रहे है आज जलवायु परिवर्तन जैसी समस्या सिर उठा रही हे और हमारा इस समस्या को नजरअंदाज करना पृथ्वी के अस्तित्व को खतरे में डालने जैसा है। जलवायु परिवर्तन से पृथ्वी का औसत तापमान लगभग 1.5 डिग्री से. तक बढ़ गया हे। 2015 के पेरिस समझौते के तहत 195 देशों ने पृथ्वी के तापमान में हो रही बढ़ोतरी को 2 डिग्री से. से कम रखने का संकल्प लिया था। दिन–प्रतिदिन पृथ्वी का तापमान और ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा बढ़ती जा रही है। इन सब के परिणाम हमारे सामने है जैसे– बाढ़, तूफान, सुनामी जैसी आपदाओं के रूप है।

जलवायु परिवर्तन का सबसे ज्यादा असर ग्लेशियरों (हिमनदों) पर पड़ रहा है। शोधकर्ताओं का कहना है कि समुद्र में मौजूद ग्लेशियर पानी के अंदर भी उम्मीद से कई गुना तेजी से पिघल रहे हैं। इससे होने वाले बदलाव इकोसिस्टम में खलबली मचा रहे है। समुद्र का जलस्तर तेजी से बढ़ रहा है। साइंस नामक पत्रिका में प्रकाशित हुए अध्ययन में शोधकर्ताओं ने दावा किया है कि सोनार तकनीक से ग्लेशियर के पानी को स्कैन किया जा सकता है और इनके तेजी से पिघलने का अध्ययन किया जा सकता है। ग्लेशियरों की पिघलने की दर गुमयों में और बढ़ जाती है। जल स्तर बढ़ने से कई द्वीपों के जलमग्न होने की आशंका पहले ही जताई जा चुकी है और यह समझा जाए तो बहुत बड़ा लचता का विषय है। जलवायु परिवर्तन का मानव जनजीवन भी बहुत भीषण प्रभाव देखा जा रहा जा रहा है। जापान में जुलाई 2019 में 57 लोग भीष्ण गर्मी की वजह से मर गयें। भारत में झारखण्ड के रापी में भयंकर सूखा पड़ रहा है तो बिहार और महाराष्ट्र में बाढ़ की स्थिति बनी है। जलवायु परिवर्तन के कारण लोग कही सूखे से झूझ रहे है तो कहल्ह बाढ़ से लोगों का जनजीवन अस्त–व्यस्त हो रहा है।

जलवायु परिवर्तन का खेती और किसानों पर असर के कारण अर्थव्यवस्था पर सीधा प्रभाव हो रहा है। देश में मानसूनी बारिश से 55 फीसद उपजाऊ जमीन सिंचित होती है। देश की 25 लाख करोड़ डालर की अर्थव्यवस्था में इस क्षेत्र की 15 फिसद हिस्सेदारी है। रोजगार देने का आज भी यह सबसे बड़ा क्षेत्र है। वर्षा में कमी सीधा देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है। क्या मनुष्य जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है– सन् 1760 से पहले जलवायु परिवर्तन प्राकृतिक हुआ करता था। लेकिन उस समय मानव श्रम को कम करने के लिए औद्योगिक क्रांति लायी गयी और अधिक मात्रा में मशीनों का उपयोग होने लगा और उत्पादन को बढ़ाया गया। इन मशीनों के उपयोग व चलाने के लिए जीवाष्म ईंधन जैसे– कोयले, तेल आदि का प्रयोग होने लगा जिनके जलने से कार्बन डाई ऑक्साइड़ उत्सूजत होने लगी। इसके साथ ही मिथेन, क्लोरो फ्लोरो कार्बन, ओजोन, नाइट्रस ऑक्साइड़ जैसी गैसों का भी उत्सर्जन बढ़ गया और इन 250 सालों में इन सभी ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा इतनी अत्यधिक हो गयी है कि अब यह एक समस्या बन गयी है। जीवाष्म ईधनों के उपयोग से कार्बन डाई ऑक्साइड़ अधिक उत्सर्जिन हो रही है जो ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ावा दे रही है। जीवाष्म ईंधनों का उपयोग ऊर्जा के लिए किया जाता है और सम्पूर्ण जीवनयापन के लिए मानव पूर्णतया ऊर्जा पर निर्भर है।

मानव अपने जीवन में ऊर्जा का उपयोग कम करके कार्बन डाई ऑक्साइड़ उत्सर्जन कम कर सकता है जिससे ग्लोबल वार्मिंग को कम करने में सहायता मिलेगी और पर्यावरण का संतुलन बनाये रखने में मदद मिलेगी। इस औद्योगिक क्रांति से पहले कार्बन डाई ऑक्साइड़ की मात्रा लगभग 280 पीपीएम थी जो वर्तमान में 1 पीपीएम की दर से बढ़ते हुए 400 पीपीएम से अधिक हो गयी है। इसलिए हम कह सकते है कि प्रकृति के साथ छेड़छाड करने में मानव ने कोई कसर नही छोड़ी, जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार मुख्य कारक मानव ही है। हम क्या कर सकते है। कार्बन उत्सर्जन व ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन को कम करके जलवायु परिवर्तन को कम किया जा सकता है। दूसरे देशों से होने वाले प्लास्टिक आयात पर प्रतिबंध लगायें जो कि अभी 25 देशों से आयात हो रहा हैं। 1 लाख 21 हजार मीट्रिक टन प्लास्टिक कचरा है जिसे कम्पनियाँ पूरे को रिसाइकल नही कर पा रही है। जो कि पर्यावरण प्रदूषण का कारण बना हुआ है। रिसाइकल करने की उन्नत मशीनों का निर्माण करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

जलवायु परिवर्तन के कारण

ज्वालामुखी विस्फोट

वे ज्वालामुखीय विस्फोट जो पृथ्वी के स्ट्रैटोस्फियर में 100000 टन से भी अधिक सल्फर डाइ ऑक्साइड को उत्सर्जित करते हैं, पृथ्वी के जलवायु को प्रभावित करने के लिए जाने जाते हैं। ये विस्फोट पृथ्वी के वायुमंडल को ठंडा करते रहते हैं क्योंकि इनसे निकलने वाली यह गैस पृथ्वी की सतह पर सौर विकिरण के संचरण में बाधा डालते हैं।

सौर ऊर्जा का उत्पादन

जिस दर पर पृथ्वी को सूर्य से ऊर्जा प्राप्त होती है एवं वह दर जिससे यह ऊर्जा वापिस जलवायु में उत्सर्जित होती है वह पृथ्वी पर जलवायु संतुलन एवं तापमान को निर्धारित करती है। सौर ऊर्जा के उत्पादन में किसी भी प्रकार का परिवर्तन इस प्रकार वैश्विक जलवायु को प्रभावित करता है।

प्लेटटेक्टोनिक्स

टेक्टोनिकप्लेटों की गति लाखों वर्षों की अवधि में धरती और महासागरों को फिर से संगठित कर के नई स्थलाकृति तैयार करती है। यह गतिविधि वैश्विक स्तर पर जलवायु की परिस्थितियों को प्रभावित करता है।

पृथ्वी की कक्षा में बदलाव

पृथ्वी की कक्षा में परिवर्तन होने से सूर्य के प्रकाश के मौसमी वितरण में परिवर्तन होता है। जिस से सतह पर पहुंचने वाले सूर्य के प्रकाश की मात्रा प्रभावित होती है। कक्षीय परिवर्तन तीन प्रकार के होते हैं इनमें पृथ्वी की विकेंद्रता में परिवर्तन, पृथ्वी के घूर्णन के अक्ष के झुकाव कोण में परिवर्तन और पृथ्वी की धुरी की विकेंद्रता इत्यादि शामिल हैं। इनकी वजह से मिल्नकोविच चक्रों का निर्माण होता है जो जलवायु पर बहुत बड़ा प्रभाव डालते हैं।

मानवीय गतिविधियां

जीवाश्म ईंधनों के दहन की वजह से उत्पन्न कार्बनडाइऑक्साइड वाहनों का प्रदूषण, वनों की कटाई, पशु कृषि और भूमि का उपयोग आदि कुछ ऐसी मानवीय गतिविधियां हैं जो जलवायु में परिवर्तन ला रही हैं।

जीवन

कार्बन उत्सर्जन और पानी के चक्र में नकारात्मक बदलाव लाने में जीवन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसका असर जलवायु परिवर्तन पर भी पड़ता है। यह कई अन्य नकारात्मक प्रभाव प्रदान करने के साथ ही, बादलों का निर्माण, वाष्पीकरण, एवं जलवायुवीय परिस्थितियों के निर्माण पर भी असर डालता है।

महासागर–वायुमंडलीय परिवर्तनशीलता

वातावरण एवं महासागर एक साथ मिलकर आंतरिक जलवायु में परिवर्तन लाते हैं। ये परिवर्तन कुछ वर्षों से लेकर कुछ दशकों तक रह सकते हैं और वैश्विक सतह के तापमान को विपरीत रूप से प्रभावित कर सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

वनों पर प्रभाव

वन पर्यावरण में कार्बनडाइ ऑक्साइड का संतुलन बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। क्योंकि वे कार्बनडा ऑक्साइड को अवशोषित कर लेते हैं। हालांकि पेड़ों की कई प्रजातियां तो वातावरण के लगातार बदलते माहौल का सामना करने में असमर्थ होने की वजह से विलुप्त हो गए हैं। वृक्षों और पौधों के बड़े पैमाने पर विलुप्त होने के कारण जैवविविधता के स्तर में कमी आई है जो पर्यावरण के लिए खराब संकेत है।

ध्रुवीय क्षेत्रों पर प्रभाव

उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुव हमारे ग्रह के जलवायु को विनियमित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं और बदलते जलवायु परिस्थितियों का बुरा प्रभाव इन पर भी हो रहा है। यदि ये परिवर्तन इसी तरह से जारी रहे तो यह अनुमान लगाया जा रहा है कि आने वाले समय में ध्रुवीय क्षेत्रों में जीवन पूरी तरह से विलुप्त हो सकता है।

जल पर पड़ने वाले प्रभाव

जलवायु परिवर्तन ने दुनिया भर में जल प्रणालियों के लिए कुछ गंभीर परिस्थितियों को जन्म दिया है। बदलते मौसम की स्थिति के कारण वर्षा के स्वरूप में पूरे विश्व में परिवर्तन हो रहा है और इस वजह से धरती के विभिन्न भागों में बाढ़ या सूखे की परिस्थितियां निर्मित हो रही हैं। तापमान में वृद्धि के कारण हिमनदों का पिघलना एक और महत्वपूर्ण मुद्दा है।

वन्य जीवन पर प्रभाव

बाघ, अफ्रीकी हाथियों, एशिया गैंडों, एडली पेंगुइन और ध्रुवीय भालू सहित विभिन्न जंगली जानवरों की संख्या में गिरावट दर्ज की गई है और इन प्रजातियों में से अधिकांश विलुप्त की कगार पर पहुंच चुके हैं, क्योंकि वे बदलते मौसम के अनुकूल समायोजित नही हो पा रहे हैं।

उच्च तापमान

पावरप्लांट, ऑटोमोबाइल, वनों की कटाई और अन्य स्रोतों से होने वाला ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन पृथ्वी को अपेक्षा त काफी तेजी से गर्म कर रहा है। पिछले 150 वर्षों में वैश्विक औसत तापमान लगातार बढ़ रहा है और वर्ष 2016 को सबसे गर्म वर्ष के रूप में रिकॉर्ड किया गया है। गर्मी से संबंधित मौतें और बीमारियां, बढ़ते समुद्रस्तर, तूफान की तीव्रता में वृद्धि और जलवायु परिवर्तन के कई अन्य खतरनाक परिणामों में वृद्धि के लिये बढ़े हुए तापमान को भी एक कारण माना जा सकता है। एक शोध में पाया गया है कि यदि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के विषय को गंभीरता से नही लिया गया और इसे कम करने के प्रयास नही किये गए तो सदी के अंत तक पृथ्वी की सतह का औसत तापमान 3 से 10 डिग्री फारेनहाइट तक बढ़ सकता है।

वर्षा के पैटर्न में बदलाव

पिछले कुछ दशकों में बाढ़, सूखा और बारिश आदि की अनियमितता काफी बढ़ गई है। यह सभी जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप ही हो रहा है। कुछ स्थानों पर बहुत अधिक वर्षा हो रही है, जबकि कुछ स्थानों पर पानी की कमी से सूखे की संभावना बन गई है।

वन्यजीव प्रजातियों का नुकसान

तापमान में वृद्धि और वनस्पति पैटर्न में बदलाव ने कुछ पक्षी प्रजातियों को विलुप्त होने के लिये मजबूर कर दिया है। विशेषज्ञों के अनुसार, पृथ्वी की एक–चैथाई प्रजातियाँ वर्ष 2050 तक विलुप्त हो सकती हैं। वर्ष 2008 में ध्रुवीय भालू को उन जानवरों की सूची में शामिल किया गया था जो समुद्र के स्तर में वृद्धि के कारण विलुप्त हो सकते हैं।

रोगों का प्रसार और आर्थिक नुकसान

विषय विशेषज्ञों ने अनुमान लगाया है कि निकट भविष्य में जलवायु परिवर्तन के परिणाम स्वरूप मलेरिया और डेंगू जैसी बीमारियों का प्रकोप और अधिक बढेगा तथा इन्हें नियंत्रित करना और भी ज्यादा मुश्किल होगा। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आँकडों के अनुसार, पिछले दशक से अब तक गर्म तरंगों के कारण लगभग 150000 से अधिक लोगों की मृत्यु हो चुकी है।

जंगलों में आग

जलवायु परिवर्तन के कारण लंबे समय तक चलने वाली गर्म तरंगों ने जंगलों में लगने वाली आग के लिये उपयुक्त गर्म और शुष्क परिस्थितियाँ पैदा की हैं। ब्राजील स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर स्पेस रिसर्च (National Institute For Space Research- INPE) के आँकडों के मुताबिक, जनवरी 2019 से अब तक ब्राजील के अमेजन वर्षा वन में कुल 74155 वनाग्नि की घटनाएं सामने आ चुकी हैं। साथ ही यह भी सामने आया है कि अमेजन वन में आग लगने की घटनाएं बीते वर्ष 2018 से 85 प्रतिशत तक बढ गई हैं।

जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा

- जलवायु परिवर्तन के कारण फसल की पैदावार कम होने से खाद्यान्न समस्या उत्पन्न हो सकती है, साथ ही भूमि निम्नीकरण जैसी समस्याएँ भी सामने आ सकती हैं।
- एशिया और अफ्रीका पहले से ही आयातित खाद्य पदार्थों पर निर्भर हैं। ये क्षेत्र तेजी से बढ़ते तापमान के कारण सूखे की चपेट में आ सकते हैं।
- अंतरराष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन पैनल की रिपोर्ट के अनुसार कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में गेहूँ और मक्की जैसी फसलों की पैदावार में पहले से ही गिरावट दर्ज की जा रही है।
- वातावरण में कार्बन की मात्रा बढने से फसलों की पोषण गुणवत्ता में कमी आ रही है। उदाहरण के लिये उच्च कार्बन वातावरण के कारण गेहूँ की पौष्टिकता में प्रोटीन, जस्ता और लोहे की मात्रा में क्रमशः 6 से 13, 4 से 7 और 5 से 8 प्रतिशत तक की कमी आ रही है।
- यूरोप में गर्मी की लहर की वजह से फसल की पैदावार गिर रही है।
- ब्लूमबर्ग एग्रीकल्चर स्पॉटइंडेक्स (Bloomberg Agriculture Spot Index) नौ फसलों का एक मूल्य मापक है जो मई में एक दशक के सबसे निचले स्तर पर आ गया था। इस सूचकांक की अस्थिरता खाद्यान सुरक्षा की अस्थिरता को प्रदर्शित करती है।

जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु वैश्विक स्तर पर संस्थान तथा समझौतों

- अंतरराष्ट्रीय जलवायु परिर्वतन पैनल (आई.पी.सी सी.)
- संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन फ्रेम वर्क सम्मेलन (यू एन एफ सी सी सी सी)
- पेरिस समझौता

जलवायु परिवर्तन और भारत के प्रयास

- जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना (एन ए पी सी सी)
- जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना का शुभारंभ वर्ष 2008 में किया गया था।
- इसका उद्देश्य जनता के प्रतिनिधियों, सरकार की विभिन्न एजेंसियों, वैज्ञानिकों, उद्योग और समुदायों को जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न खतरे और इससे मुकाबला करने के उपायों के बारे में जागरूक करना है।

इस कार्य योजना में मुख्यत: 8 मिशन शामिल हैं

- राष्ट्रीय सौर मिशन
- विकसित ऊर्जा दक्षता के लिये राष्ट्रीय मिशन
- सुस्थिर निवास पर राष्ट्रीय मिशन
- राष्ट्रीय जल मिशन
- सुस्थिर हिमालयी पारिस्थितिक तंत्र हेतु राष्ट्रीय मिशन
- हरित भारत हेतु राष्ट्रीय मिशन
- सुस्थिर कृषि हेतु राष्ट्रीय मिशन
- जलवायु परिवर्तन हेतु रणनीतिक ज्ञान पर राष्ट्रीय मिशन

अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन

- अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन सौर ऊर्जा से संपन्न देशों का एक संधि आधारित अंतर–सरकारी संगठन (संधि–आधारित अंतरराष्ट्रीय अंतर सरकारी संगठन) है।
- अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन की शुरुआत भारत और फ्राँस ने 30 नवंबर, 2015 को पेरिस जलवायु सम्मेलन के दौरान की थी।
- इसका मुख्यालय गुरुग्राम (हरियाणा) में है।
- अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन के प्रमुख उद्देश्यों में वैश्विक स्तर पर 1000 गीगावाट से अधिक सौर ऊर्जा उत्पादन क्षमता प्राप्त करना और 2023 तक सौर ऊर्जा में निवेश के लिये लगभग +1000 बिलियन की राशि को जुटाना शामिल है।
- अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन की पहली बैठक का आयोजन नई दिल्ली में किया गया था।

निष्कर्ष

दिन प्रतिदिन जलवायु में होने वाले बदलाव के कारण पर्यावरण पर दुष्प्रभाव बढ़ रहे हैं। शोधकर्ताओं के मुताबिक पिछले कुछ दशकों के दौरान मानवीय गतिविधियों ने इस बदलाव में तेजी लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जलवायु परिवर्तन को नियंत्रित करने और धरती पर स्वस्थ वातावरण बनाए रखने के लिए धरती पर मानवीय गतिविधियों द्वारा होने वाले प्रभाव को नियंत्रित किए जाने की आवश्यकता है।

❋❋❋

जैविक खेती निरन्तर आय का स्त्रोत : सफलता की कहानी

भवानी शंकर मीना, सुशीला कलवानिया एवं के. सी. मीना
कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेंदगंज ,कोटा एवं कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

विश्व स्तर पर जैविक खेती का खाद्य, पोषण, स्वास्थ्य व पर्यावरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान हैं। भारत में विभिन्न कृषि जलवायु परिस्थितियों के कारण सभी प्रकार के जैविक उत्पादों के उत्पादन की बहुत अधिक संभावनाएँ हैं। वर्तमान में जैविक खेती के उत्पादन की माँग घरेलू एवं निर्यात क्षेत्र में लगातार बढ़ रही हैं। जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए यदि जैविक खेती में पोषण प्रबन्धन, कीट व बीमारियों की रोकथाम तथा खरपतवारों का उचित प्रबंधन एवं उत्पाद का मूल्य निर्धारण सही तरीके से किया जाये तो निश्चित ही जैविक खेती से मानव, मृदा, जल स्वास्थ्य के साथ–साथ उत्पादकता में भी आ ातीत बढ़ोत्तरी की जा सकती है। जैविक खाद्य उत्पादों से मावन स्वास्थ, पर्यावरण, गौसंरक्षण, जल संरक्षण, वायु संरक्षण, मृदा स्वास्थ एवं संरक्षण में सुधार होता है।

आज रासायनिक खेती के कारण हमारे सामने कई चुनौतिया है। इसके परिणामस्वरूप मृदा में अनेकों विकार उत्पन्न हो गये तथा मृदा की उत्पादकता में निरन्तर कमी आ रही है। शोधकर्ताओं के अनुसार बढ़ती रासायनिक खेती के कारण रसायनो के अत्याधिक प्रयोग से मृदा व मानव स्वास्थय को अधिक क्षति पहुच रही है। मानव कई बीमारियों का शिकार हो रहा है, जैसे केंसर, ब्लड़ प्रेसर, सुगर व कोलेस्ट्रॉल इत्यादि ने आज के मानव को झनझोर दिया है।

राजस्थान के हाड़ौती संभाग के किसानों ने जैविक खेती में अपनी इच्छा जताई। हाड़ौती क्षेत्र के गांव कटावर, तह0 अटरू जिला बारां के एक किसान श्री बृजराज गौड़ ने जैविक खेती करने की मुहिम चालू की। श्री गौड़ ने कृषि अनुसंधान केन्द्र, उम्मेदगंज, कोटा पर स्थित महर्षि पराशर कृषि शोध पीठ के जैविक खेती विशेषज्ञ डॉ. भवानीशंकर मीणा से पारस्परिक विचार–विमर्श किया और वहां चल रहे जैविक खेती पर शोध कार्य एवं इसके विभिन्न नवाचारों के परिणामों से प्रेरित होकर श्री बृजराज गौड ने वर्ष 2017 में एक हैक्टेयर क्षेत्र में गेंहूँ, दलहन, तिलहन व सब्जियों की जैविक खेती प्रारंभ की तथा निम्न जैविक तकनीकियों एवं नवाचारों को अपना रहे हैं।

- **जैविक गेंहूँ उत्पादन के लिए पोषण प्रबंधन :** श्री गौड़ ने जैविक गेंहूँ उत्पादन हेतु ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई , रुपांन्तरण अवधि में ढैंचा की हरी खाद वाली फसल ली व उसी खेत में मिला दीया। फसल चक्र अपनायाँ। बीजामृत से बीज उपचार, 12 टन गोबर की खाद/हैक्टेयर (50% नत्रजन) + 4 टन वर्मीकम्पोस्ट/हैक्टेयर (50% नत्रजन) तथा वर्मीवॉश (10%) का पर्णीय छिड़काव 25, 50 व 75 दिन पर प्रयोग किया है। 25% नत्रजन किसी भी तरल जैविक खाद स्रोत यानी पंचगव्या (5%) /वर्मीवॉश (10%) का पर्णीय छिड़काव और अमृत संजीवनी / मटका खाद / जीवामृत मृदा में प्रयोग किया। मिट्टी में रहने वाले कीडों के नियंत्रण के लिए 2.5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से नीम की खली से मिट्टी का उपचारए मिट्टी की तैयारी के समय 100 किलोग्राम गोबर की खाद में समृद्ध 2.5–3.0 किलोग्राम ट्राइकोडर्मा विरिडी का मिट्टी में प्रयोग कियाए खरपतवार की संख्या व संघनता में कमी हेतु गेंहूँ की बुआई का समय नवंबर के दूसरे सप्ताह से तीसरे सप्ताह तक व खरपतवार रोकथाम के लिए बासी बीज बिस्तर का पालन किया तथा 35 दिन और 65 दिन पर मैनुअल 2 निराई–गुडाईए पक्षियों से फसल बचाव हेतु फसल के दूध अवस्था में बर्ड रिपेलेंट रिबिन की स्थापना की।

- जैविक चना उत्पादन के लिए पोषण प्रबंधन के लिए 3 टन गोबर की खाद/हैक्टेयर (75% नत्रजन) + तरल कंसोर्टिया के जैव उर्वरक 1250 मिली/हैक्टेयर 100 किलोग्राम गोबर की खाद में समृद्व कर मिट्टी की अंतिम जुताई के समय खेत में प्रयोग कर + गौमूत्र (10%) का पर्णीय छिड़काव 25, 50 व 75 दिन पर प्रयोग किया। रुपांन्तरण अवधि में हरी खाद वाली फसल उगाम व उसी खेत में मिला दीया व फसल चक्र अपनाया। मृदा में 2.5 किग्रा / हेक्टेयर ट्राइकोडर्मा विराडी का प्रयोग, 100 किग्रा वर्मीकम्पोस्ट से समृद्ध करके रात भर नमीयुक्त रखकर, मिट्टी की तैयारी के समय प्रयोग किया है।

- **कीट प्रबंधन :** रोटेशन में निम्नलिखित में से 2–3 पौध संरक्षण जैविक इनपुट का उपयोग किया है।

- गंभीर प्रकोप होने पर नीमास्त्र (5% स्प्रे) और एग्निएस्ट्रा 25 लीटर / हेक्टेयर (5% स्प्रे) का छिड़काव।

- एजाडिरेक्टिन 10000 पीपीएम / 2.0 मिली / लीटर पानी का छिडकाव।
- फलियां लगने के बाद 15 दिन के अंतराल पर गोमूत्र 50 मिली. नीम की पत्ती का अर्क 50 मिली. छाछ 50 मिली / लीटर पानी का छिडकाव।
- हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा को नियंत्रित करने के लिए ब्यूवेरिया बैसियाना 1000–1500 मिली / हेक्टेयर (5 मिली / लीटर) का छिडकाव।
- 40–50 / हेक्टेयर की दर से ""T" " आकार के पक्षी पचों की स्थापना।
- हेलिकोवर्पा की निगरानी के लिए 5 / हेक्टेयर की दर से फेरोमोन ट्रैप का उपयोग किया हैं।
- कीटों के प्रभावी प्रबंधन के लिए 7–10 दिनों के अंतराल पर जैव कीटनाशकों का छिडकाव दोहराएं।

- **खरपतवार प्रबंधन :** पहली हाथ से निराई 35 दिन पर और दूसरी हाथ से निराई 50–55 दिन पर।

प्रभाव : श्री गौड़ वर्तमान में लगभग 4 हैक्टर में उत्पादित अनाज, तिलहन, दलहन, सब्जियां एवं मसालें इत्यादि को प्रसंस्कृत और मूल्य संवर्धित करकें बाजार में बिक्री करते है। जोकि आज पूरे हाड़ौती क्षेत्र सहित 6–7 राज्यों के विभिन्न शहरों में ऑन लाइन फार्म एवं अमेजन, फिलिपकार्ट पर इनका जय श्री महाकाल जैविक ब्रांड अपनी पहचान बना चुका है। जय श्री महाकाल कृषि फार्म राजस्थान राज्य जैविक प्रमाणिकरण संस्था द्वारा पंजिकरण है। श्री गौड जैविक खेती हेतु जैविक खाद, जैविक दवा जैसे जीवामृत, बीजामृत, जीव द्रव्य, आंवला रसायन, गाजर घास से यूरिया, सोयाबीन से ग्रोथ प्रमोटर, छाछ में तांबा व निबोली डालकर कीटना ाक, नीम, ऑक, धतूरा सत्यानाशी, सीताफल, करंज, लहसुन, तम्बाकु, हरी मिर्च, गोमूत्र से कीटनाशक आदि अपने फार्म पर ही तैयार करते है तथा इनको तैयार करके खेती में उपयोग लेने से खेती की लागत में कमी हुई है और फसल उत्पादन एवं उप उत्पादन अधिक भाव एवं मूल्य पर बाजार में बिकते है जिससे अधिक आमदनी मिल रही है। वर्श 2022–23 में में लगभग 11–12 लाख रुपये की जैविक खेती के उत्पाद व उपउत्पाद से आय प्राप्त हुई हैं। हाड़ौती क्षेत्र में लगभग 5000 किसानो ने जैविक खेती का मूलमंत्र अपनाया, जिनकी संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। जैविक खेती सफलता पूर्वक करने पर श्री गौड़ को कई बार राज्य स्तर व संस्था द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। श्री गौड़ ने हाड़ौती क्षेत्र में जैविक खेती को बढ़ावा देने के साथ–साथ अच्छी आय प्राप्त कर अपने बच्चो को कोटा में श्रेश्ठतम शिक्षा दिलवा रहे है।

उपलब्धियां : श्री गौड़ जैविक खेती से उत्पादित हर तरह के उत्पाद जैसे जैविक अनाज, दालें, खाद्यान्न, तेल, फल, सब्जियों, आचार मसाले इत्यादी स्वयं तैयार कर बाजार में बेचते है। उन्होंने जैविक खेती के नवाचारों से दूरदर्शन एवं आकाशवाणी एवं अन्य प्रसार प्रचार माध्यमों से राज्य एवं देशभर के किसानों एवं अन्य हितधारकों को जागरूक किया। अपने फार्म पर अन्य इच्छुक किसानों को प्रेरित कर जैविक खेती पर जीवंत प्रशिक्षण भी प्रदान करते है। जिससे अब तक क्षेत्र में अनेकों किसानों ने जैविक खेती की ओर अग्रसर हो रहे है। जैविक खेती में उत्कृष्ट कार्य करने पर राज्य सरकार तथा अन्य महत्वपूर्ण संस्थाओं द्वारा श्री गौड को सम्मानित किया जा चुका है।

''अभिनव कृषि'' अंकवार प्रकाशित होने वाली विषय सामग्री

अंक	प्रकाशन माह	विषय–विशेषांक
1	जून	खरीफ फसल विशेषांक, खरीफ फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार, प्रबंधन, मृदा एवं जल संरक्षण
2	सितम्बर	रबी फसल विशेषांक, रबी फसलों में समन्वित कीट, रोग व खरपतवार प्रबंधन, उन्नत कृषि उपकरण
3	दिसम्बर	सिंचाई प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, जैविक खेती, समन्वित कृषि प्रणाली, आधुनिक डेयरी, मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन
4	मार्च	जायद खेती, संरक्षित खेती, हाई–टेक बागवानी, फल–फूल, सब्जी उत्पादन, मृदा प्रबंधन, पशुपालन प्रबंधन, फल सब्जी परिरक्षण एवं खाद्य प्रसंस्करण

चुकंदर के पोषक मूल्य, फायदे और उपयोग

राजू यादव, बलराज सिंह, मनोज एवं कविता अरविंदाक्षन
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर एंव उद्यानिकी व वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़

परिचय : चुकंदर एक मूसला जड़ वाली वनस्पति है व बीटा वल्गैरिस नामक जाति के पौधे होते हैं जिसकी मानव द्वारा शताब्दियों से खेती की जा रही हैं और कई उन्नत किस्में विकसित की है। इसकी मूसला जड़ का रंग लाल, जामुनी व पीला होता एवं स्वाद में हल्की–मीठी होती है। चुकंदर एक बहुमुखी और जीवंत सब्जी हैं। शरीर में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ाने के साथ यह सौंदर्यता को बरकरार रखने में लाभदायक हैं। चुकंदर के गुणकारी होने के कारण इसका उपयोग आमतौर पर सलाद या जूस के रूप में किया जाता है।यह डाइट का अहम हिस्सा है, इसे कच्चा सलाद के रूप में, सूप और अन्य सब्जियों की करी में भी इसका उपयोग किया जाता हैं। यह पारंपरिक आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में उपयोगी सामग्री के तौर पर उपयोग में लाया जाता हैं। इसमें अच्छी मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट और विभिन्न पोषक तत्व मौजूद होता है जो स्वास्थ्य को कई तरह की बीमारियों से बचाव करने में सहायता करते हैं ।

चुकंदर की खेती : चुकंदर की खेती शितोषण क्षेत्रों में की जाती है। भारत में चुकंदर की खेती उत्तराखण्ड, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व पंजाब के ठण्डे क्षेत्रों में रबी मौसम में की जाती है। भारत में चुकंदर की खेती सितंबर से मार्च माह के मध्य की करना लाभदायक रहता है। चुकंदर की खेती से उत्तम पैदावार लेने के लिए बलुई दोमट मिट्टी या लवणीय मिट्टी को सबसे उपयुक्त माना जाता है। इसकी खेती करने के लिए मृदा का पी एच मान 6 से 8 के बीच होना आवश्यक है। खेत में जल निकासी की व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि जलभराव की स्थिति इसके पौधों सड़ने लगते हैं। यह ठंण्डे मौसम की फसल है। इसका सबसे अच्छा रंग, बनावट और गुणवत्ता ठंण्डे मौसम की स्थिति में ही प्राप्त होती है। लेकिन चुकंदर को हल्की गर्म जलवायु में भी उगाया जा सकता है। चुकंदर की फसल को अधिक वर्षा की आवश्यकता नहीं होती है, इस लिये अधिक वर्षा की स्थिति में इसकी पैदावार को प्रभावित होती है। चुकंदर के पौधों को अंकुरित होने के लिए सामान्य तापमान की जरूरत होती है, तथा 15–21 डिग्री तापमान को इसके विकास के लिए उपयुक्त माना जाता है।

इसमें अच्छी मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट और विभिन्न पोषक तत्व मौजूद होता है जो स्वास्थ्य को कई तरह की बीमारियों से बचाव करने में मदद करता है। इस प्रकार हैं :

पोषक तत्व :

क्र. सं.	पोषक तत्व	पोषक मूल्य
1	एनर्जी	43 कैलोरी
2	कार्बोहाइड्रेट	9.56ग्राम
3	प्रोटीन	1.61ग्राम
4	फाइबर	2.8ग्राम
5	कुल फैट	0.17ग्राम
6	कैल्शियम	16 मिलीग्राम
7	आयरन	0.8 मिलीग्राम
8	मैग्नीशियम	23 मिलीग्राम
9	सोडियम	40 मिलीग्राम
10	पोटैशियम	325 मिलीग्राम
11	फास्फरोस	40 मिलीग्राम
12	विटामिन C	4.9 मिलीग्राम
13	थायमिन	0.031 मिलीग्राम
14	राइबोफ्लेविन	0.04 मिलीग्राम
15	विटामिन B	60.06 मिलीग्राम

चुकंदर के फायदे : कई शारीरिक समस्याएं हैं, जिनसे कुछ हद तक राहत पाने में चुकंदर मदद कर सकता है। चुकंदर में विटामिन और अन्य पोषक तत्वों की समृ) मात्रा पाई जाती है, सेहत के लिए चुकंदर खाने के फायदे।

मधुमेह में चुकंदर के फायदे : चुकंदर खाने के फायदे में मधुमेह पर नियंत्रण भी शामिल है। इसके हाइपोग्लेमिक गुणों के कारण मधुमेह के प्राकृतिक इलाज के रूप में चुकंदर का सेवन किया जा सकता है। यह एक गुणकारी खाद्य पदार्थ है। इसका सेवन रोजाना करने से रक्त शर्करा संतुलित हो जाती है, जिससे मधुमेह के मरीजों के लिए यह फायदेमंद रहता है।

हृदय के लिए चुकंदर खाने के फायदे : हृदय को स्वस्थ रखने के लिए चुकंदर खाना लाभप्रद रहता हैं। शरीर का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है हृदय, जिसका स्वस्थ रहना हर हाल में जरूरी है। इसमें मौजूद नाइट्रेट तत्व रक्तचाप को सामान्य कर हृदय रोग और हृदयाघात से बचा सकता है।

उच्च रक्तचाप में चुकंदर खाने के फायदे : उच्च रक्तचाप एक गंभीर शारीरिक समस्या है, जिसमें धमनियों में रक्त का दबाव सामान्य से अधिक बढ़ जाता है। उच्च रक्तचाप के कई घातक परिणाम हो सकते हैं। सही स्वास्थ्य के लिए धमनियों में रक्त का प्रवाह सामान्य रहना जरूरी है। उच्च रक्तचाप को नियंत्रित करने के कई आधुनिक उपाय मौजूद हैं, लेकिन प्राकृतिक उपचार में चुकंदर का सेवन किया जा सकता है। बीटरूट में नाइट्रेट नामक तत्व पाया जाता है, जो उच्च रक्तचाप को कम करने का काम करता है।

कैंसर में चुकंदर खाने के फायदे : कैंसर से बचने के लिए चुकंदर खाना फायदेंमद हैं। चुकंदर फेफड़ों और स्किन कैंसर को शरीर में विकसित होने से रोक सकता है। गाजर और चुकंदर का जूस एक साथ मिलाकर पीने से शरीर में ब्लड कैंसर की आशंका को कम किया जा सकता है।

एनीमिया में चुकंदर खाने के फायदे : आयरन शरीर में लाल रक्त कोशिकाएं बनाने में मदद करता है और लाल रक्त कोशिकाएं शरीर के विभिन्न भाग में ऑक्सीजन पहुंचाने का काम करती हैं। एनीमिया ऐसी अवस्था होती है, जब शरीर में आयरन की कमी के कारण पर्याप्त लाल रक्त कोशिकाएं नहीं बन पाती। एनीमिया का उपचार करने के लिए आयरन युक्त खाद्य पदार्थ का सेवन करना लाभदायक रहता है।

ऊर्जा के स्त्रोत के रूप में : थकान मिटाने के लिए चुकंदर के जूस पीने से फायदा होता हैं। इसके 100 मिलीलीटर जूस में 95 kcal ऊर्जा होती है, जिसके सेवन से शरीर में तुरंत ऊर्जा मिल सकती है।

कोलेस्ट्रोल को नियंत्रित करने में फायदेमद : शरीर में बनने वाले खराब कोलेस्ट्रॉल को एलडीएल (LDL) कहा जाता है। यह रक्त धमियों में जमा होकर गंभीर रूप से नुकसान पहुंचा सकता है। शरीर में इसकी मात्रा ज्यादा होने से हार्ट अटैक का खतरा बढ़ जाता है, इसीलिए इसे नियंत्रित रखने की सलाह दी जाती है। इसको नियंत्रित करने में चुकंदर का रस फायदमदे रहता हैं।

एथलीटों के लिए चुकंदर के संभावित उपयोग : चुकंदर के रस में नाइट्रेट की काफी अधिक मात्रा होती है। एथलीटों के लिए नाइट्रेट्स का सेवन फायदेमंद हो रहता है क्योंकि यह खेल में उनके प्रदर्शन में सुधार करता है। चुकंदर कई तरह से खेल में बेहतर प्रदर्शन में मदद करता है। यह स्केलेटल की मांसपेशियों की ऑक्सीजन की खपत को कम करने, मांसपेशियों के तनाव को कम करने, मांसपेशियों के थकने में देरी करने में सहायक रहता हैं।

मासिकधर्म में लाभदायक : महिलाओं को हर महीने मासिकधर्म आने से रक्त की हानि होती है। जिसे दूर करने के लिए चुकंदर के रस को पीना चाहिए। इसमें लोह की मात्रा अधिक होता है जो लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या को बढ़ाता है और रक्त की पूर्ति करता है। अक्सर मासिकधर्म के दौरान महिलाये अधिक कमजोर और सुस्त महसूस करती है इसका मुख्य कारण कमजोरी होता है। इसलिए महिलाओं को ऐसी अवस्था में चुकंदर का सेवन करना चाहिए। यह आपके शरीर को मजबूत बनाता है और सुस्ती को दूर करता है।

त्वचा के लिए : चुकंदर त्वचा की झुर्रिया को कम करने में मदद करता है। लड़कियों को हमेशा अपने चेहरे पर दाग–धब्बे की समस्या होती है इन समस्या को चुकंदर द्वारा ठीक किया जा सकता है। क्योंकि चुकंदर में अच्छी मात्रा में फोलेट, फाइबर होता है। चुकंदर की तासीर ठंडी होती है यह त्वचा पर फोड़े–फुंसी आने की समस्या को रोकती है। अगर आप अपनी त्वचा की सुरक्षा करना चाहते है तो रोजाना एक ग्लास चुकंदर रस अवश्य पिये।

चुकंदर का उपयोग कैसे करें : चुकंदर को अपनी डाइट में शामिल करने के कई तरीके हैं। चुकंदर को अपनी नियमित डाइट का हिस्सा बना सकते हैं, इसे सूप, सलाद में डाला जा सकता है, इसका जूस बनाया जा सकता है, कच्चा या पका कर भी खाया जा सकता है। इसके फायदे प्राप्त करने के लिए आप चुकंदर का जूस भी पी सकते हैं।

चुकंदर के दुष्प्रभाव : चुकंदर को नियमित डाइट का हिस्सा माना जाता है। हालांकि, इससे जुड़े कुछ दुष्प्रभाव भी बताए गए हैं।

- कई लोगों को चुकंदर खाने के बाद स्किन एलर्जी की शिकायत होती है।
- अधिक चुकंदर का रस पीने से मूत्र का रंग भिन्न हो जाता है।
- अत्यधिक मात्रा में सेवन करने से आपके पेट में दर्द व ऐंठन हो सकता है।
- कुछ लोगो के अत्यधिक सेवन करने से कलर स्टूल की समस्या हो सकती है।
- अधिक चुकंदर खाने से पहले अपने चिकिस्तक की सलाह ले।

चुकंदर का इस्तेमाल करते समय सावधानियां : चुकंदर का उपयोग करते समय निम्न सावधानियां रखनी चाहिए। गर्भवती महिला के लिए गर्भावस्था के दौरान चुकंदर खाया जा सकता है। लेकिन सभी खाद्य पदार्थों की तरह, चुकंदर को भी कम मात्रा में खाना चाहिए। स्तनपान कराने वाली महिला हैं तो चुकंदर खाने से शिशु में नाइट्रेट विषाक्तता नहीं होती है। बच्चा सुरक्षित रहता है क्योंकि चुकंदर का नाइट्रेट सामग्री स्तन के दूध में ज्यादा मात्रा में नहीं जाता है। चुकंदर में नाइट्रेट सामग्री काफी ज्यादा होता है और अगर इसे सीधा शिशुओं को दिया जाए तो यह नाइट्रेट विषाक्तता का कारण बन सकता है। तीन महीने या उससे कम उम्र के बच्चों को चुकंदर नहीं देना चाहिए।

सब्जियों की जैविक खेती मानव स्वास्थय एवं प्रकृति के लिए एक अनमोल उपहार

राजू यादव, प्रकाश एवं बलराज सिंह
श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान) एवं भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

भारत दुनिया का सबस अधिक जनसंख्या वाला देश है। बढ़ती जनसंख्या के कारण कृषि योग्य भूमिसंसाधन लगातार घटते जा रहे है। इसलिए मनुष्य की जरूरतों को पूरा करने के लिए कृषि भूमि की उत्पादकता व मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार की बहुत जरूरत है। इन सब पहलुओं को ध्यान में रखते हुए स्वतंत्रता के बाद हरित क्रांति का सूत्रपात किया गया जिसने विकासशील देशों को भोजन में आत्मनिर्भर बनने के मार्ग दिखलाए और सीमित प्रकृति के खिलाफ कृषि उत्पादन को बनाए रखा। फसल उत्पादन में रासायनिक उर्वकों एवं कीटनाशको के बढ़ते उपयोग के कारण हमारे सभी खाद्य पदार्थ मुख्य रुप से सब्जी वाली फसलकी गुणवत्ता घट रही है बाजार मे उपलब्ध सब्जियों में भारी मात्रा में कीटनाशको की मात्रा पाई जाती है साथ ही इनके उपयोग से हमारे वातावरण और मृदा पर हानिकारक प्रभाव पड रहा है। पिछले कुछ वर्षों से लोगों मे अच्छी सब्जी उत्पादन की मांग बढ़ रही है, और अधिक से अधिक लोग जैविक सब्जी और इससे बने अन्य उत्पादों की मांग कर रहे हैं। सब्जी उत्पादक किसान जो जैविक विधिया अपना रहे है वो वर्तमान मे अधिक मुनाफा कमा रहे हैं। क्योंकी जैविक कृषि प्रणाली एक ऐसी प्रणाली है जिसमे कृत्रिम अवयवों जैसे रसायन उर्वरक, हार्मोन इत्यादि का प्रयोग नहीं किया जाता है, और अधिकतर कृषि अवशेष, फसल चक्र, चट्टानों के खनिज, गाय के अवशेष, जैव उर्वरक और जैव फसल सुरक्षा विधि काम मे ली जाती है। जैविक खेती के चार मुख्य सिद्धांत है जैसे स्वास्थ्य, पारिस्थितिकी, ईमानदारी और सुरक्षा।

जैविक सब्जियां : जैविक सब्जियां उन सब्जियों को कहते हैं, जिन्हें विभिन्न रसायनों और कीटनाशकों का प्रयोग किए बिना उगाया जाता है। वास्तव में सब्जियों को उगाने में जैविक खाद, रसोई घर के कचरे या किचन वेस्ट आदि का उपयोग किया जाता है। ये सब्जियां पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं और रसायनों का इस्तेमाल न होने के कारण स्वास्थय के लिए भी बहुत फायदेमंद होती हैं।

जैविक सब्जी खेती : एक प्रकार की उत्पादन प्रणाली है जो मृदा के पारिस्थितिक तंत्र और लोगो के स्वस्थ्य को बनाये रखती है यह प्रतिकूल प्रभावों को आदानों के उपयोग के बजाय पारिस्थितिक प्रक्रियाओ, जैव विविधिता और स्थानीय पारिस्थितिक के अनुकूल चक्रो पर निर्भर करता है। हमारे पर्यावरण को लाभ पहुंचाने के लिए जैविक खेती परम्परा, नवाचार और विज्ञानं की शाखा को जोड़ती है तथा लोगो के जीवन की अच्छी गुणवता को बढ़ावा देती है। जैविक सब्जी खेती कृत्रिम उर्वरको और कीटनाशकों पर निर्भर होने के बजाय प्राकृतिक विविधता और जैविक चक्रो को बढ़ावा देती है जैविक खेती खेत को आत्मनिर्भर और टिकाऊ बनाने पर आधारित है। जैविक खेती मृदा उपजाऊ क्षमता को सुदृढ़ बनाये रखने के साथ.साथपौधो, पशु, मानव आदि के स्वास्थ्य को स्वस्थ्य बनाये रखती है।

1. जैविक फसल में खरपतवार प्रबंधन।
2. कीट प्रबंधन ।
3. जैविक कीटनाशक प्रबंधन।
4. जैविक रोग प्रबंधन।
5. जैविक उत्पादन में खस्ता फफूंदी प्रबंधन के लिए स्वी त उत्पाद।

जैविक सब्जी की खेती क्यों ?

जैविक खेती इसलिए की जाती है क्योकि यह सतत कृषि विकास के लिए अच्छी है, मिटटी की जैविक गतिविधि का रखरखाव, रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक के अपशिष्ट प्रभाव को कम करती है। खाद गुणवत्ता में सुधार जो मानव जीवन, वन्य जीवन और पर्यावरण की देखभाल करता है जैविक सब्जी की खेती से मनुष्य के जीवन पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

सब्जी फसलों में जैविक खेती के उद्देश्य

सब्जी फसलों में जैविक खेती के मुख्य उद्देश्य है जो इस प्रकार है

- जैविक खेती से पर्याप्त मात्रा में उच्च पोषण गुणवत्ता वाले भोजन का उत्पादन करना।
- जैविक खेती में स्थानीय रूप से संगठित उत्पादन प्रणालियों में नवीनीकरण संसाधनों का उपयोग करना।
- मिटटी और जैव विविधता की दीर्घकालिक उर्वरता को बनाये रखना।
- जैविक खेती से कृषि तकनीकियो के परिणाम स्वरूप होने वाले सभी प्रकार के प्रदूषण को कम करना।
- जैविक खेती से सूक्ष्म जीवो, मृदा वनस्पतियों व जीवो, पौधों एवं जानवरो के उपयोग को शामिल करके कृषि प्रणालियों में जैविक चक्रो को प्रोत्साहित करना।

जैविक खेती के प्रमुख घटक

जैविक खेती करने पर उत्पादको को सभी जैविक पोषक पदार्थो जैसे गोबर की खाद, केंचुए की खाद, हरी खाद, जैव उर्वरक आदि का प्रयोग करना चाहिए। उत्पादक को एक स्रोत पर निर्भर ना रहते हुए एक से अधिक स्त्रोतों का प्रयोग करें और फसल की पोषक तत्व आवश्यकता को पूरा करे। जैविक उत्पादको को कंपोस्ट एवं केंचुए की खाद आदि का उत्पादन करना चाहिए, इससे वे इसकी गुणवत्ता के बारे में निश्चित हो सकते है और साथ ही कृषि लागत को भी कम कर सकते है। फसल और पशु अवशेष का सदुपयोग किया जा सकता है, कृषको को बायोगैस प्लांट भी लगाना चाहिए व इसकी सलरी जैविक सब्जी उत्पादन में प्रयोग की जा सके बायोगैस स्लेरी में 1.5 प्रतिशात नत्रजन की मात्रा पायी जाती हैं जिससे इसको सीधे खेत में प्रयोग कर सकते है।

हरी खाद : जैविक खेती में हरी खाद, अपघटित पौधों की सामग्री खाद के रूप में उपयोग की जाती है तब हरी खाद कहलाती है। हरी खाद की फसलों में आमतौर पर फलीदार परिवार की होती है लगभग औसतन 1 टन अच्छी तरह से उगाई गयी हरी खाद 4.5 से 4.7 किलोग्राम नत्रजन के बराबर होती है जो 10 किलोग्राम यूरिया के बराबर होती है, जैसे सनहेम्प एव ढैचा।

जैविक फसल में खरपतवार प्रबंधन

निवारक विधि

- बुआई के लिए उन फसलों के बीजो का उपयोग नहीं करना चाहिए जो जो खरपतवार से प्रभावित हो।
- खाद के गढ़ो में खरपतवार डालने से बचे।

- एक खेत से दूसरे खेत में ले जाने से पहले कृषि मशीनरी को अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिए।
- सिंचाई चैंनल, बाड़ रेखा और बिना फसल वाले क्षेत्रो को साफ रखना चाहिए।
- बीज प्रमाणीकरण ही बोये।

भौतिक यांत्रिक विधि
- हाथ निराई ।
- जुताई ।
- गुडाई।
- जमीन को समतल करना।
- बाढ़ ।
- पलवार ।
- मृदा संरक्षण।

जैविक विधि
जैविक विधि में कीट द्वारा खरपतवारो को नियंत्रित करना। जैसे –
- लैंटाना कैमरा–क्रोकिडोसीमा लैंटाना (कीट)
- ओपूनटीया डिलेन्नी–डेक्टाइलोपीयस (कीट)
- पार्थेनियम– जाइगोग्रामा बाइकोलोरेटा (कीट)

कीट प्रबंधन
जैविक फसलों में रासायनिक विधि से फसल लेने की तुलना मे कीट व रोगों का प्रकोप कम होता है। क्योंकि फसल आंतरिक रूप से अधिक स्वस्थ होती है फिर भी हम फसल सुरक्षा के लिए जैव नियंत्रक जैसे ट्राईकोडर्मा, नीम उत्पादो का प्रयोग कर सकते है। 4 ग्राम ट्राईकोडर्मा से 1 किलो ग्राम बीज का उपचार करें। नीम का तेल (3 से 4 मिली लीटर पानी), नीम के पत्तों को उबाल कर अथवा नीम के सूखे बीज का 5 प्रतिशतघोल बनाकर सप्ताह मे एक बार छिड़काव करने से अच्छे परिणाम और फसल सुरक्षा के लिए लाभदायक रहता हैं। रोजाना निगरानी करते रहे और कीड़ों का प्रकोप आरंभ होते ही साप्ताहिक अंतराल पर छिड़काव अवश्य करें।

बाधक फैसले : जैविक तरीको से फसलों में कीट के प्रकोप को रोकने के लिए हम बाधक फसलों का भी उपयोग कर सकते हैं जैसे की बंदगोभी में डायमंड बैक मोथ कीट से बचाव के लिए खेत के चारो तरफ सरसों की बुवाई, कद्दु वर्गीय सब्जियों में सफेद मक्खी से बचाव के लिए मक्के की बुवाई, टमाटर में सुत्रकृमी व फल छेदक से बचाव के लिए गेंदे की बुवाई कर सकते हैं।

रो कवर : रो कवर सब्जियों को कीटो के आक्रमण से बचाते है रो कवर विशेष रूप से पिस्सू भृंगो एवं ककड़ी भृंगो द्वारा क्षति को कम करने में प्रभावी होते है। पाथरेकार्पिको खीरे या अन्य सब्जियों में पंक्ति कवर लगाने से फूलो को परागकण की जरूरत नहीं होती है जिससे किट क्षति को बहुत कम किया जा सकता है।
मल्च थिरपंड के लिए नीले रंग का मल्च और सफेद मखियो के लिए पीले रंग का मल्च करना उचित रहता है।

जैविक कीटनाशक : वनस्पति मालीद्वारा उपयोग के लिए विभिन्न प्रकार के जैविक कीटनाशक उपलब्ध है जिनमे बीटी *(बैसिलस थुरिंगिनेसिस)*, पाइरेथ्रम, रोटेनों, कीटनाशक साबुन, डायटोमेसियस अर्थ, नीम एवं बागवानी तेल शामिल है।

जैविक रोग प्रबंधन : जैविक रोग प्रबंधन की सफल कुंजी रोकधाम है जबकि रोग मुक्त प्रत्यारोपण, स्थल चयन, फसल चक्र, पौधे की दुरी, प्रशिक्षण, संक्रमित पौधों के लिए उनकी जड़ो की स्वच्छता और संरक्षित फसल की खेती प्रमुख रणनितियों आदि का उपयोग सब्जी फसलों पर बीमारिया को रोकने के लिए किया जाता है।

- **फसल चक्रण** : फसल चक्र में हर 5 से 6 साल के अंतराल के बाद चारा की मक्का के साथ फसल चक्र से मटर पर मुरझाना प्रबंधन में फायदेमंद रहता हैं। अरहर परती शिमला मिर्च, अरहर मटर शिमला मिर्च का फसल चक्र अरहर के फुसैरियम विल्ट को कम करने में प्रभावी रहता हैं। आलू की फसल में चने की कतारो साथ लम्बा रोटेशन राल्स्टोनिया सोलनेरिस्म के कारण होने वाले बैक्टीरिया विल्ट के खिलाफ एक प्रमुख शिफारिश है।

- **बुआई की तारीख का प्रबंधन** : बुआई की तारीख का प्रबंधन में आलू की देर से बुआई, पछेती जुताई की कमी को कम करता है यह फरवरी मार्च के दौरान बोई गयी फसलों में ओकरा येलो वेन मोजेक वायरस आम नहीं है क्योकि वेक्टर आबादी बहुत कम या अनुपस्थिति होती है।

जैविक उत्पादन में खस्ता फफूंदी प्रबंधन के लिए स्वीकृत उत्पाद : जैविक उत्पादन में खस्ता फफूंदी प्रबंधन के लिए स्वीकृत उत्पाद में

खाद के प्रकार	नत्रजन प्रतिशत	फास्फोरस प्रतिशत	पोटाश प्रतिशत	कैल्शीयम प्रतिशत	कार्बनिक पदार्थ प्रतिशत	पानी की मात्रा प्रतिशत
पशु	2.0	1.5	2.2	2.9	70	8
भेड़	1.9	1.4	2.9	3.3	54	11
मुर्गी पालन	4.5	2.7	1.4	2.9	59	9

लहसुन का अर्क, पैराफिनिक तेल, लौंग का तेल, अजवायन का तेल और नीम के तेल का अर्क आदि।

भारत में जैविक सब्जी की खेती को अपनाने में बाधाएं–भारत में जैविक सब्जी की खेती को अपनाने में निम्न बाधाएं आती है।

- जैविक कीट नियंत्रण के बारे में गहन से खेती की जानकारी।
- रूपांतरण के शुरूआती कुछ वर्षो में उपज में कमी।
- कार्बनिक खेत पर इनपुट उतपन्न करना मुश्किल हो सकता है।
- मवेशियों की परिवारों की संख्या दिन प्रति दिन धीरे धीरे कम होना।
- कचरे का संग्रहण और प्रसंस्करण प्रबंधन सबसे कठिन है।
- पर्याप्त अनुसंधान एवं विकास के साथ साथ प्रशिक्षण की कमी होना।

जैविक खेती के लाभ

- उत्पादन की स्थिरता को बढ़ाता है। कार्बन डाइऑक्साइड के लिए मिट्टी को सिंक के रूप में प्रदान करता है जिससे मिट्टी में कार्बनिक कार्बन सामग्री में सुधार होता है और ग्लोबल वार्मिंग को कम करने में योगदान रहता है।
- जैविक खेती अब अपनी कार्बन पृथक्करण क्षमता के लिए वैश्विक ध्यान प्राप्त कर रही है। यह अनुमान लगाया गया है कि कृषि द्वारा मृदा कार्बन पृथक्करण की कुल संभावना कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन में अनुमानित वार्षिक वृद्धि का लगभग 40 प्रतिशत कम कर सकता है।
- ऊर्जा, श्रम और पानी की बचत करके उत्पादन की लागत (15–16 प्रतिशत) को कम करता है जिससे कृषि आय में वृद्धि होती हैं।
- जैविक रूप से उगाए गए फल स्वास्थ्य और पोषण की दृष्टि से बेहतर होते हैं।
- जैविक रूप से उगाए गए फल कीट–पीड़कों और रोगों के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते हैं।
- पानी के परिवहन में सुधार करता है और इस तरह सतह और भूजल के अपवाह को कम करता है।

जैविक उत्पादन प्रणाली के लिए रूपांतरण

रूपांतरण अवधि वास्तव में जैविक प्रबंधन की शुरुआत, फसलों एवं पशुपालन के प्रमाणीकरण के बीच का समय हैं। जब पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ मानकों के सिद्धांतों को पूरा करती हैं, तो किसी रूपांतरण अवधि की आवश्यकता नहीं होती है। जब कुंवारी भूमि का उपयोग जैविक उद्देश्य के लिए किया जाता है, तो रूपांतरण अवधि की आवश्यकता नहीं होती है। पशुधन सहित पूरे खेत को समय के साथ मानकों के अनुसार परिवर्तित किया जाना चाहिए। यदि किसी खेत को एक बार में परिवर्तित नहीं किया जाता है, तो उसे खेत दर खेत के आधार पर परिवर्तित किया जाना चाहिए। रूपांतरण योजना में इन मानकों से संबंधित सभी पहलुओं को शामिल किया जाएगा। परिवर्तित भूमि और जानवरों को जैविक और पारंपरिक प्रबंधन के बीच आगे–पीछे नहीं किया जाएगा।

जैविक सब्जियों की उत्पादन तकनीक

जैविक कृषि करने के लिए कृषकों को जैविक खेती के मूल सिद्धांतों और नियमो का पालन करना चाहिए। इसलिए सबसे पहले समय पर खेत की 2–3 जुताई करे मलबे, ठूंठ, पत्थरों आदि को हटाकर जैविक खेती के लिए तैयार करना चाहिए। इसके लिए खेत को लगभग दो साल तक रूपांतरण अवधि में रखते है व इस अवधि में खेत में जैविक विधियों का प्रयोग करते है। रसायनों का प्रयोग नही करते है, केवल कार्बनिक पदार्थ जैसे हरी खाद, गोबर की खाद इत्यादि का प्रयोग करते है ।

जैविक सब्जी उत्पादन के लिए पोषण

कृषको को फसल की पोषक तत्वों की आवश्यकता की जानकारी होनी चाहिए जिससे समान मात्रा में पोषक तत्वों की गणना करके जैविक पदार्थो द्वारा पोषक तत्वों को देना चाहिए। इससे फसल का उत्पादन कम नहीं होगा। आमतौर पर जैविक खेती में निम्न प्रकार की कार्बनिक और जैविक खाद व सूक्ष्म जीवों का उपयोग करते है।

- गोबर की खाद जिसमे 0.5 प्रतिशत व केंचुए की खाद जिसमे 1.5 प्रतिशत नत्रजन होनी चाहिए का प्रयोग करे, यह मात्रा खाद बनाने के तरीके और खाद की मात्रा के अनुसार कम या अधिक हो सकती है।
- ढैंचा और सनई की हरी खाद को मिट्टी में मिलाने से 30 से 40 किलो ग्राम प्रति हेक्टर नत्रजन फसल को प्राप्त हो जाती हैं।
- जैव उर्वरक जैसे एजेटोबेक्टर, रायजोबियम का प्रयोग करने से 20 से 30 किलो ग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाती है। जैव उत्पादक नत्रजन के आधार पर जैव खाद की गणना कर सकते है व फास्फोरस और पोटाश की अधिकतर मात्रा भी इन जैविक खाद से मिल जाती है।
- फॉस्फेट विलायक और वाम का उपयोग कर फसल के लिए फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है। एजेटोबेक्टर, रायजोबियम और पीएसबी का एक पैकेट (200 ग्राम) एक एकड़ के लिए प्रयोग किया जाता है। इसे बीज उपचार या पौध उपचार द्वारा प्रयोग कर सकते हैं व वाम का प्रयोग 5 किलो ग्राम प्रति एकड़ की दर से करते है जिसको इसे खेत की अंतिम तैयारी के समय मृदा में अच्छे से मिला देवे।

जैविक सब्जी उत्पादन की भविष्य में संभावनाएं : हमारे देश मे जैविक सब्जी उत्पादन की अपार संभावनाएं हैं । हमारे देश के जैविक उत्पादों की अंतर्राष्ट्रीय बाजारो में लगातार मांग बढ़ रही है अंतः किसानों को अपने क्षेत्र के एक भाग पर जैविक सब्जी उत्पादन अवश्य करना चाहिए। जिससे वह अपने लिए जैविक उत्पाद पैदा करने के साथ साथ अच्छी आय भी प्राप्त कर सकें।